—रानकिशोरी देवी—

जीवन-संगिनी

राजकिशोरी

को

# दो शब्द

भोग और वैराग्य के प्रबल आकर्षणों के बीच सन्तुलन ढूँढती हुई जीवन धारा चली जा रही है। यह सन्तुलन जिस कर्म-क्षेत्र में ढूंढना पड़ा, उसके द्वार पर ही परिवार, समाज और सरकार ने द्वन्द्व खड़ा कर दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में ज़ोर के साथ कहा—"मेरी मर्जी से चलो, अन्यथा रोटी के भी लाले पड़ेंगे।" अपने विचारों और सिद्धान्तों का आकर्षण उलझ पड़ा जीवन के सुख और शान्ति के आकर्षण से। अन्त में विचारों का आकर्षण विजयी हुआ।

इस विजय की भूमिका, अपनी चढ़ती जवानी में, १६ वर्ष की अवस्था में, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के एक मर्म-स्पर्शी व्याख्यान से मुझे मिली थी। हिन्दू-विश्व विद्यालय के कला भवन की वह संध्या, जब मंच की सीढ़ियों पर बैठा हुआ मैं विश्व-कवि के करुण रस की गद्य कविता सुन रहा था, शायद कभी न भूलेगी। कांपती हुई वाणी में कवि कह रहे थे,

"सांसारिक सुखवाद जिस ऊंची से ऊंची चोटी पर तुम्हें पहुँचा सकता है, उसकी भी कल्पना ऋषियों ने की थी। आप बड़े से बड़े धनी, महान वक्ता, प्रतिभाशाली कवि हो सकते हैं, लेकिन उन चोटियों पर भी चढ़कर कवि-ऋषि पुकारता है—'तत: किम्'"

कवि कहते गये,

"पश्चिमी सभ्यता के वज्र-प्रहार से पूर्व की आखें चौंधिया गई हैं। इस समय अनासक्त गार्हस्थ्य-धर्म, सन्यास, आदि उपहास की वस्तु बन गये हैं। पश्चिम से बहती हुई इस प्रचंड धारा को जब मैं देखता हूं, मेरा रोम रोम काप उठता है। युगों का परिश्रम क्या मिट्टी में मिलने वाला है? प्राचीन भारतीय सस्कृति के स्तूप को जब मैं टूट कर गिरते हुए देखता हू, मेरे हृदय की करुण व्यथा अतरिक्ष में गूज कर कहता है–'तत. किम्'"

विश्व कवि की इस करुण पुकार पर एक किशोर हृदय ने अन्तःकरण में चुपचाप एक प्रतिज्ञा ली थी, जिसकी अभिव्यक्ति इस जीवन-धारा में है।

# विषय सूची

*पहला*

# पिता से विद्रोह

## *आन्दोलन का परिचय*

राजनीतिक संघर्ष में उलझ कर हम अक्सर अपने चारों ओर के समाज को भूल जाते हैं। कभी-कभी तो ऐसे भी लोग मिलते हैं जो कहते हैं कि समाज-सुधार से क्रांतिकारियों का क्या संबंध? वे भूल जाते हैं कि गंदे वातावरण में क्रांति का पौधा भी दूषित हो जाता है। दूसरे, क्रांति कभी एकांगी नहीं होती। याद रहे, मस्तिष्क में दराजें नहीं हुआ करतीं, जिनमें एक दराज में हम राजनीतिक क्रांति रखें और दूसरी में सामाजिक रूढ़िवाद। क्रांतिकारी विचार जब फैलते हैं, तो पूरी विचारधारा को प्रभावित करते हैं। यदि नहीं करते, तो मानना चाहिये कि क्रांति की धारणा पक्की नहीं हुई।

हिन्दुस्तान के समाजवादियों के सामने आर्थिक और राजनीतिक संघर्षों के अलावा सामाजिक परिवर्तन की महान जिम्मेदारी है। सामाजिक

प्रश्नों मे दो बड़े प्रश्न हैं। एक तो जात पात के भेद-भाव को तोड़ना, दूसरा स्त्रियों को समान अधिकार देना।

आज तो समाजवाद का सदेश लेकर गावों और शहरों म मैं घूमता रहता हूँ। परन्तु आज से २५ वर्ष पहिले, मैं बिहार के कोने कोने में पर्दा तोड़ने के आन्दोलन को फैलाने के लिये घूमता रहता था। वह आन्दोलन मेरा सार्वजनिक जीवन में प्रवेश था।

२८ अप्रैल १९२८ को वह रात मुझे आज भी याद है, जब मे अपनी स्त्री को घर से भगा कर गया स्टेशन पहुँचा था। उस घटना मे जो परिवार स नाता टूटा, फिर जुट नहीं सका। बहुत से इस बात को नहीं जानते ह कि मैं निष्कासित पुत्र हूँ, और इसका कारण है पर्दा-विरोध। १९२६ म गांधी जी मेरी जन्मभूमि दरभंगे आये थे। उस समय शहर की महिला-सभा में उनके और स्त्रियों के बीच एक पर्दा डाला गया था। गाँधी जी ने इसके विरोध में एक तीव्र टिप्पणी अपने साप्ताहिक में लिखी थी। मेरी अभी-अभी शादी हुई थी। रात को जब सब सो जाते, मुझे चुपके से पाँव दबा कर अपनी पत्नी के कमरे में जाना पड़ता और सूर्य्य निकलने के पहले मैं भाग आता। मुझे याद है, एक दिन देरी हो गई तो किस तरह परीशान होकर घर के पीछे के रास्ते मे भाग कर दूर टहलने चला गया और इस तरह घर लौटा, जैसे टहल कर बाहर से आ रहा हूँ।

१९२६ में कॉलेज की पढ़ाई समाप्त कर मैं घर लौटा। गाव म बाहर घास पर एक शाम को आस पास के सात-आठ नौजवान इकट्ठे हुए।

मैंने प्रस्ताव रखा कि पर्दा हम उठाना चाहिए। प्रश्न था, कौन प्रारंभ करे। आखिर मैंने ही शुरू करना तय किया। गाँधी जी को एक लंबा पत्र लिखा। पिता जी को सूचना मिली। पारिवारिक संघर्ष का जन्म हुआ। महीनों समझाने, बुझाने, डराने, धमकाने एवं बड़ों को राजी करने का क्रम चलता रहा। अन्त में गाँधी जी की पंचायत हुई और निर्णय हुआ कि गाँधी जी मेरी पत्नी राजकिशोरी को पढ़ाने के लिए साबरमती से किसी महिला को भेजेंगे। फिलहाल पर्दा तोड़ने का काम स्थगित रहेगा।

इस निश्चय के अनुसार पहिले तो गांधी जी ने मनाबेन पटेल को भेजना चाहा। किसी कारणवश वह न आ सकी, तो स्व० मगन लाल गांधी की पुत्री राधा गांधी और दुर्गाबाई को गांधी जी ने भेजा। इस बीच पिताजी ने राजकिशोरी को उसके नैहर, गया जिले के मँझवे गाँव में भेजवा दिया। वहाँ ही राधा और दुर्गा गई। यहाँ काम प्रारंभ ही हुआ था कि दुर्घटना हो गई। श्री मगन लाल गांधी कलकत्ते से वापसी में अपनी लड़की से मिलने उतरे और १३ अप्रैल का उपवास का दिन वहीं बिताया। वापसी में उन्हें बुखार चढ़ा और पटने आकर श्री शम्भूशरण वकील के घर पर बिस्तर पकड़ लिया। डाक्टरों के सारे प्रयत्नों के बावजूद, वे २८ अप्रैल १९२८ को स्वर्गीय हो गये।

उनकी मृत्युशय्या के पास इकट्ठे पटने के नागरिकों ने पर्दा तोड़ने के आंदोलन को छेड़ने का निश्चय किया। पिता की मृत्यु के बाद राधाबाई लौटना चाहती थीं। प्रश्न उठा कि मेरी पत्नी राजकिशोरी का क्या हो ?

गांधी जी का साबरमती से तार आया :—"राजकिशोरी को साबरमती भेज दो।" इसकी सूचना पाकर परिवार के लोगों में तहलका मच गया। उस समय श्री जमनालाल बजाज पटने थे। उनके पास शिष्टमण्डल गया। पर गांधी जी की आज्ञा में दखल कौन दे सकता था?

परन्तु, इसे किस तरह पूरा किया जाय। क्या घर वाले राजकिशोरी को जाने देंगे? इसलिये गया से २२ मील दूर, मँझवे गाँव में २८ अप्रैल १९२८ की रात को मैं मोटर किराया कर गया। राजकिशोरी से पूछा कि चलना है तो फिर चलो, नहीं तो दिन निकलने पर नहीं जा सकोगी। वह तैयार हो गयी। १४ महीने के छोटे बच्चे विजय को गोद में ले बिस्तर बाँध वह आधे घंटे में चल पड़ी। घर से बाहर आ गाड़ी पर बैठ गयी। चलते समय घर के लोगों को पता चला। उन्होंने रोकना चाहा, परन्तु ड्राइवर को पहले ही समझा रखा था। उसने गाड़ा हाँक दी और तेजी से मोटर चलाकर हम रात में गया, फिर पटना आये। दूसरे दिन सारा जत्था अनुग्रह बाबू के साथ साबरमती को रवाना हो गया। यह मेरा परिवार से अन्तिम विच्छेद था। उन नाते को टूटे आज २५ वर्ष होने को आये। गाँधी जी ने कहा था "विद्रोही पुत्र को पिता के धन की आशा नहीं रखनी चाहिए"। इसलिए साबरमती से लौट कर मैं और राजकिशोरी छोटे पुत्र विजय के साथ दरभंगे जिले के एक गाँव में फूस की झोपड़ी डाल, जब रहने लगे, तो किसी तरह की आर्थिक सहायता घर से नहीं मिली, न हमने माँगी। वे जवानी के जोश के दिन थे। छः महीने हम चावल और नमक खाकर

रह होगे। मैं लकड़ी काटता, राजकिशोरी खाना बनाती, आँटा पीसती। मैं कन्धे पर खादा लाद कर गाँव गाँव घूमता। परिवार-समाज से बहिष्कृत हम एक हरिजन बन गये थे। गाँव वाले कुएँ पर पानी भरने में दिक्कत पैदा करते थ।

उधर पटन के नागरिकों का राय स आठ जुलाई १९२८ को सारे प्रात में पदा-विरोधी दिवस मनाया गया। पटने में राधिका सिन्हा इन्स्टिच्यूट म पहला सभा हुई, जिसमें प्रमुख नागरिक सपत्नीक आये। उस सभा म सयोग से स्वर्गीय श्री भूला भाई देसाई भी उपस्थित थे। उन्होंने आन्दोलन चलाने क लिए पाँच सौ रुपये का चेक दिया। और हम दोनों सारे प्रात में घूम घूम कर इस आदोलन को फैलाते रह। लाठियाँ भी चलीं। गालियाँ तो साधारण बात थीं। परन्तु धार धीरे यह आदोलन जोर पकड़ता गया और अब किसी नवयुवक को उन कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा, जिन्हें हमें करना पड़ा था।

परन्तु स्त्रियाँ अब भा स्वाधीनता से दूर हैं। क्या नवयुवक और नवयुवती उस लड़ी को फिर पकड़ेगी तथा स्त्रियो को समानता एवं स्वाधीनता के महान लक्ष्य की ओर ले जायेंगी?

*पिता के नाम पत्र*

इस आदोलन की भूमिका में जो हृदय मन्थन हुआ, उसका पूरा विवरण अभी देना सभव नहीं। परन्तु १९२७ के दिसम्बर में पू० पिताजी क नाम लिख गये ४ पत्र नीचे दे रहा हूँ। पू० पिताजी (स्वर्गीय) कर्त्तव्य-

निष्ठ और उससे भी बड़ी चीज अत्यन्त स्नेह करने वाले व्यक्ति थे। स्नेह और समाज-निर्माण के द्वन्द्व में व्यथित हृदय ने बारबार भिक्षा मांगी थी, सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने की स्वतन्त्रता और स्नेह की अनुकूलता की। परंतु वह न मिली। जीवन संघर्ष की धारा पर वह चला।

नीचे केवल शाब्दिक परिवर्तन कर तथा संक्षेप में चारो पत्र ज्यों का त्यों दे रहा हूं।

( १ )

रघुनाथपुर

९ १२ २७

परम पूज्य पिताजी के चरण कमलों में,

इधर बहुत दिनों से अपना विचार स्पष्ट रूप से मैं आपके सामने रखने को सोच रहा था पर संकोच और भाववश मैं ऐसा न कर सका और इसके साथ अपने प्रति आपका विचार भी स्पष्ट रूप से मुझ पर प्रकट न हो सका। पर, अनुमान से मुझे इसका पूर्ण विश्वास हुआ कि आपका प्रेम मुझ पर है। इस प्रेम का बदला कभी संभव है, यह मालूम नहीं होता। आपकी कुछ सेवा भी मुझ से हो सकेगी, यह भी संभव नहीं मालूम होता। मैंने इसके बदले "अपने प्रेम को औरों पर पूर्ण वितरण करना" ही निश्चय किया है। देखूं, कहाँ तक इसमें मुझे सफल [illegible] है। पर इस प्रेम पर विश्वास रख कर ही मैंने आपके पास अप[illegible] को [illegible] रूप से प्रकट करने का निश्चय किया है। आशा है [illegible]

आज छः वर्ष का समय हुआ, जब पहले पहल मुझे होश हुआ और इस संसार के विस्तृत कर्म-क्षेत्र के बीच मैंने अपना मार्ग निश्चित किया। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' यह गीता का वचन मेरे दिमाग में चक्कर काटा करता था। इसी समय गांधी जी की पुकार हुई। हम नवयुवकों को देश पर अपना भविष्य बलिदान करने का आह्वान हुआ। मैंने अपना कर्तव्य स्पष्ट देखा। मुझे विश्वास हुआ कि अपना सच्चा धर्म्म रखना है, तो अंग्रेज सरकार की पाठशालाओं से असहयोग करना ही होगा। पर अधीर न हुआ। मेरी उम्र उस समय १५ वर्ष की थी और गांधी जी ने १६ वर्ष से कम उम्र वालों को पितृ आज्ञा के बिना विद्यालय छोड़ने की सलाह न दी थी। मैं रुक गया। शीघ्रता से असहयोग नहीं किया। लगातार १ वर्ष विचार करता रहा। माघ पञ्चमी के दिन जब मेरा १६ वाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ, मैंने विद्यालय छोड़ दिया और आप की आज्ञा न मिलने पर घर भी छोड़ने का निश्चय कर लिया। पर आपने एक तरह से आज्ञा दे दी और मेरा विरोध न किया। उस उदार भावना से आबद्ध होकर मैं रह गया और घर न छोड़ पाया।

उसके बाद मेरी शादी हुई। शादी के बाद मेरे विचार में फिर बहुत परिवर्तन हुए। धीरे धीरे वैवाहिक सिद्धांत की गम्भीरता ज्यों-ज्यों मैंने अनुभव की त्यों-त्यों मेरी इच्छाओं का नाश होता गया और धीरे धीरे सारी इच्छा मात्र का नाश करना ही मेरे जीवन का व्रत हो गया।

अब मेरे जीवन की एक धारा बन गई; निश्चित उद्देश्य हो गया। मैंने स्वर्ग, राज्य, धन, सुख सभी की कामना त्याग दी। केवल कर्तव्य पालन

ही अपना धर्म बनाया। कठिन से कठिन कर्तव्य भी शान्त चित्त म पूरा करने का मैंने निश्चय कर लिया।

इसके बाद मेरे हृदय मे विचार उठने लगे कि पढने के बाद में क्या करू गा। पहले से ही निश्चय था कि मैं केवल अपना कर्तव्य पालन करू गा। फिर मेरे हृदय मे विचार उठने लगे कि जमीन्दारी करना भी अधर्म है। दूसरों की कमाई पर रुपया उड़ाना ठीक नहीं। मैंने घर छोड़ने का निश्चय कर लिया। परन्तु उसी समय गाधी जी बनारस पहुँचे और उन्होंने मेरा विचार बदल दिया। उन्होंने समझाया कि जमींदारी करने में पाप नहीं, पर उस धन का विशेष अंश उन्ही के पास जाना चाहिए जहाँ से वह आया हो। इसी सिद्धान्त को लेकर आपकी, देश की और अपने रैयत की सेवा करने की भावना से मैं घर आ गया।

खादी का मेरा कार्य चलता ही था और ज्यादा चलने लगा। सूत द्वारा ही जो रुपये हो सकें, गरीबों को देने का निश्चय कर लिया। इसमें कठिनाइयाँ हुईं, यह आप को विदित ही है। परन्तु अब विशेष रूप से कठिनाइयाँ आने लगीं। इस काम म लगे रहने पर कुछ न कुछ खर्च हो ही जाता है, जैसे काँग्रेस और सभाओं में जाने का, अखबारों का इत्यादि। यह खर्च बहुतों को असह्य और भारी मालूम पड़ा। इधर मुझे आप लोगों के खर्च बेकार मालूम पड़ने लगे। मैं साफ साफ दिल का भाव कहूँगा। मेरा पूरा विश्वास है कि ईश्वर पत्थर और फूस के मदिर में एक सा ही रहता है। पत्थर के मदिर मनुष्य केवल अपने अहंभाव को तृप्त करने के ही लिए बनाता

हैं। फिर अपने रैयत की शिक्षा, गरीबों और बीमारों का कुछ यत्न किये बिना उनके रुपए ईंटों और पत्थरों में लगाना मुझे पाप मालूम पड़ा। परन्तु आप को अपना दृष्टिकोण समझाना मेरे लिए असंभव था। फिर धन आपका, आप चाहे लुटा दें, मुझे क्या? इसी कारण मैं शांत रहा।

परन्तु मुझे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि समाज मुझ पर अनावश्यक बन्धन लादना चाहता है। सबसे पहले मेरे इस सिद्धांत पर कि सभी मनुष्य समान हैं चाहे कोई गरीब हो चाहे अमीर, आघात हुआ। मैं चाहता था कि मैं सभी जाति और सब तरह के लोगों से स्वतंत्रता पूर्वक मिलूं। पर मैं रोक दिया गया। किसी से मिलने को कोई धर्म पाप नहीं बताता। यह केवल अपनी झूठी मर्यादा और धन के अभिमान को टोना है। मैं समाज के ऐसे नियम को हर्गिज नहीं मान सकता। मेरा हृदय उबल उठा। मैंने देखा, कितनी जबर्दस्त बेड़ी मेरे पैरों में डाली गई।

साथ-साथ मेरे सिद्धांतों के विषय में अनेक गलतफहमियाँ फैलाई गईं। मेरा अपने धर्म पर पूर्ण विश्वास रहा और है। समय-समय पर जो त्रुटि मुझसे हो जाती है, वह मेरे सिद्धांत के कारण नहीं; पर आलस्य और भूल के कारण। इसलिए मैंने प्रायश्चित भी किया। पर आपने न मालूम क्यों मेरे सिद्धांत को ही बदला हुआ समझा और समय-समय पर अत्यन्त क्षुब्ध हुए। आपकी बातों से मुझे कभी रंज नहीं हुआ। आपकी बातें सुनना मेरा धर्म है। पर जब और लोग भी आपकी नकल करने लगते हैं, तो मेरे लिए सहन करना कठिन हो जाता है।

इसके साथ एक और कठिन समस्या उपस्थित हो गई। जिसकी जिम्मेदारी आपने, उसके पिता ने और उसने दी है तथा मैंने ली है, उस स्त्री का कुछ भी भला न कर सका, उल्टे मुझ से बुराई होने की नौबत आ गई। मैं तन मन-धन से देश के कार्य में लग गया और मेरा जीवन एक दूसरे ही र्रे पर चलने लगा। परन्तु वह तो दूसरे ही समाज में पली थी। अनेक प्रयत्न करके भी उसने अपना रास्ता नहीं बदला। मेरा मन क्षुब्ध हो गया। मैंने देखा कि मेरी जीवन संगिनी भविष्य में मेरी कुछ भी सहायता न कर सकेगी उल्टे भार हो जायेगी। उससे मन विरत होने लगा। एक बार, पर थोड़ा ही देर के लिए, मेरे मन में यह पाप भावना भी उदित हुई कि मैं किसी दूसरा योग्य लड़का से क्यों न शादी कर लूँ। पर एकाएक मैं सभला और मैंने देखा कि कितना बड़ा अनर्थ हो रहा है। उस बेचारी अबला का जीवन ही मैं नष्ट कर रहा हूँ। अपना विचार बदल मैं उसको सुधारने में लग गया। परन्तु मुझे सफलता न मिली। इसमें उसका दोष न था। उसने अपने आपको सुधारने का पूरा प्रयत्न किया। उसने दीन होकर कहा "मैं क्या करूँ, मैं लाचार हूँ।' कोई दूसरा उपाय न देख मैंने निश्चय किया कि उसे किसी आश्रम में ले जाकर रखूँ, जहाँ और शिक्षित स्त्रियों के साथ रह कर वह अपना जीवन बना सके। इसमें पर्दा तोड़ना होगा, घर छोड़ना होगा, बदनामी सहनी होगी, कष्ट सहना होगा, और आपको कष्ट होगा।

पर्दा तोड़ने का मेरा निश्चय अटल है। पर्दा रखना किसी धर्म का अंग नहीं और पर्दा तोड़ने से पाप होगा यह कोई नहीं कह सकता। फिर

केवल प्राचीन प्रथा के कारण स्त्री जाति के उत्कर्ष का पथ रोकना मैं उचित नहीं मानता। पिताजी ! इस विषय पर मुझे समझाना व्यर्थ है। मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि स्त्री व्यभिचारिणी हो जाय यह भी सह्य है, पर उन्हें पर्दे में रखना ठीक नहीं। इस पर मेरा विश्वास अटल है, बदलने वाला नहीं।

घर छोड़ने में भी हानि क्या है ? समय पड़ने पर बड़ों-बड़ों ने घर छोड़े हैं। आप कहेंगे "तुम लड़के हो। तुम कैसे अपनी स्त्री और लड़के की रक्षा कर सकोगे ?" तो मेरा जवाब यही है कि आपको मेरे ऊपर विश्वास करना चाहिए। यदि आपने मेरी शादी कर दी, तो फिर उसकी जिम्मेदारी के लायक भी मुझे मानना पड़ेगा।

बदनामी तो मेरे जैसे लोगों के भाग्य में बदा ही है। आज समाज महास्वार्थी है। सब अपने स्वार्थ के लिए करते हैं, तो फिर मैं क्यों न अपना आदर्श देखूं। समाज में इतने व्यभिचार नित्य होते हैं, पर समाज चू तक नहीं करता। केवल उसका रोष सुधारकों पर हो जाता है। खैर वह रोष करे या न करे मुझे क्या मतलब ? हम तो अपना रास्ता देखेंगे।

कष्ट अवश्य सहना होगा। आप कहेंगे कि छोटे बच्चे को बहुत कष्ट होगा। पर उसको तो सबसे कम कष्ट होगा। उसे तो अभी केवल भर पेट दूध चाहिए। हाँ, उसकी माँ को श्रम अधिक करने होंगे। पर स्त्री के लिए सबसे अधिक कष्ट स्वामी से त्यक्त होने का है। यह कष्ट जो वह यहाँ पा रही है और संभवतः यदि उपाय न हुआ तो आजन्म पायगी, उससे वह बचेगी और उसे भी आराम होगा। आपलोगों को छोड़ने से हमें कष्ट होगा सही, पर यहाँ

के मानसिक कष्ट से उद्धार पाने के कारण वहाँ का कष्ट कठिन नहीं मालूम पड़ेगा। खर्च के लिए मैं काफी हूँ। आपने कृपा कर मुझे इतनी शिक्षा दे दी है कि मैं अपना और अपने परिवार का पालन कर सकता हूँ।

आपको कष्ट अवश्य होगा, परन्तु जैसे इतने कष्ट आपने सहन किये, वैसे थोड़ा और सहन कर लीजिये। कम से कम दो वर्ष के लिए भी साबरमती आश्रम में रह आने की आज्ञा आप हमें दे दें। वहाँ से आने पर मैं अवश्य आपकी सेवा करूँगा। आशा है आप हमलोगों के हित को ध्यान में रख कर जाने की आज्ञा अवश्य देंगे।

हमलोगों के धर्म के विषय में आप चिन्ता न करें। आप विश्वास रखें रामनन्दन सब कुछ कर सकता है, पर आपको धोखा नहीं दे सकता। मैं अपने धर्म का पूर्ण पालन करूँगा। खान पान का पूरा विचार रखूँगा। बंगाल में एक किस्सा है कि एक औरत को एक लड़का हुआ। वह संयोग से बड़ा पहलवान निकला और दूर दूर जाकर पहलवानों से कुश्ती लड़ने लगा। उसकी माँ चाहती थी कि वह बराबर पास रहे। पर वह तो नामी पहलवान था। कभी यहाँ कभी वहाँ जाया ही करता था। आखिर उसकी माँ ने और लोगों को मिला कर अपने लड़के का पैर ही कटवा दिया, जिस से वह कहीं आने जाने लायक ही न रहे। पुराणों में कथा है कि वेदव्यास ने शुकदेव की तपस्या को भङ्ग करने के लिए इन्द्रसभा से अप्सराओं की याचना की थी। बड़े बड़े मोह में पड़े। आप मोह में पड़कर हमारे हित का ख्याल न भूलें और हमें जाने की आज्ञा अवश्य दें।

राजकिशोरी के पिता ईश्वरीबाबू की आज्ञा हमने ले ली है। उन्होंने यही कहा "रामनन्दन बाबू ! संसार में कोई विद्वान, कोई धनी, कोई सुखी होना चाहता है। पर, आप तो केवल देश की सेवा करना चाहते हैं। इसमें भी आप सफल न हुए और मेरी लड़की ने आपका साथ न दिया, तो आपका और उसका, दोनों का जीवन व्यर्थ जायेगा। आप मेरी लड़की के लिए जो हित समझें करें।"

विनीत सेवक

रामनन्दन

(२)

रघुनाथपुर
९—१२—२७
(रा ६॥—८॥)

परमपूज्य पिताजी के चरण कमलों मे,

आपका कृपापत्र मिला। मेरे पत्र की भाषा अवश्य जैसी होनी चाहिए थी, वैसी नहीं थी। इसका कारण यही था कि आप के पास पत्र भेजने में मुझे हृदय के कोने-कोने को ढूंढना पड़ता है। क्योंकि मैं अविकृत रूप में अपने भाव आपके सामने रखना चाहता हूँ। यदि मैं ठीक ठीक न रक्खू तो मुझे पाप का भागी होना पड़ेगा। इसलिए आशा है भाषा और शैली पर आप विशेष ध्यान न देंगे।

मेरे पत्र के प्रथम अंश के अर्थ में बहुत गलत फहमी हो गई है। आपको हमारी सेवा की आवश्यकता हो या न हो, हमलोगों का धर्म, आपकी सेवा करना है। परंतु आपके प्रेम का बदला कितनी ही सेवा कर मैं दे नहीं सकता, बदला देना असम्भव है। सेवा तो अवश्यमेव निरन्तर करनी चाहिए। परन्तु पितृ ऋण से उऋण होने का साधन मेरी समझ से यही है कि पिता ने जितना प्रेम किया हो, उतने प्रेम का दान वह दूसरों को दे। इसी को दूसरे रूप में हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि पुत्र होने से पितृ ऋण से मनुष्य उऋण होता है। आपने जितना हम सबों के लिए किया, उसका आधा भी अपने लोगों के लिए हम सब कर सकेंगे, इसमें सन्देह मालूम पड़ता है। हम सबों केलिए आप ने अवश्य अधिक छोड़ा है, परन्तु यदि कुछ भी न छोड़ते तब भी हमारी श्रद्धा कम न होती। केवल शिक्षा आपने इतनी हम सबों को दी है कि हम चिर ऋणी रहेंगे। ईश्वर करे आपकी सेवा में हमेंकभी कष्ट मालूम न हो। आपकी कठिन से कठिन सेवा आनन्द पूर्वक हमलोग कर सकें।

परन्तु क्या अपने महान प्रेम और त्याग के लिए आप हम ... चाहते हैं। परन्तु, पिताजी मेरे पास है क्या जो मैं आपको मैं ... वर्ष हुए जबकि मैंने अपने प्राण और हृदय को ... समर्पित कर ... ऊपर अब किसी का अधिकार नहीं ... उस हृदय के ... माँगनी विडम्बना मात्र है; कारण ... स्वयं ही नि... वेद, गाधी और आप ...।

(

समर्पण को पूर्ण करना ही मेरे जीवन का व्रत है। काम, क्रोधादि बलात् उसपर अधिकार जमाते है। उनसे युद्ध चलाना पड़ता है और न मालूम कबतक चलेगा। परंतु वह किसी का अधिकार अपने ऊपर स्वीकार नहीं कर सकता। इसलिए बार बार वह स्वयं अपना पथ निश्चित करता है और अपनी ही प्रेरणा से पथ बदलता भी है।

यह तो हृदय की बात हुई पर शरीर पर आपका पूर्ण अधिकार है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि बिना क्लेश, सानन्द आपकी आज्ञा पर यह शरीर चलाया जा सकता है। परंतु पिताजी! आत्मा और हृदय विहीन शरीर ( मुर्दा नहीं जिन्दा ) इतना नाचीज है कि कोई भी भावुक पुत्र उसे पिता के पावन चरणों पर अर्पित करने में प्रफुल्ल नहीं होता है, इसी कारण अकसर धर्म संकट पड़ने पर लोगों ने पितृ-आज्ञा का उल्लंघन किया है। पर हृदय विहीन शरीर पिता की आज्ञा पर न्योछावर करना उचित नहीं माना। प्रह्लाद ने पिता की आज्ञा नहीं मानी। पर, क्या इसका पाप उन्हें नहीं लगा? अवश्य लगा। पिता की आज्ञा को न मानना चाहे वह किसी भी कारण से क्यों न हो, अवश्य पाप का देने वाला है। यह हमने माना कि उनका हृदय भगवद् भक्ति में तल्लीन हो गया था। पर हृदय को वैसा ही रखते हुए क्या वे मुँह से अथवा शरीर से हिरण्यकश्यप की आज्ञा का पालन नहीं कर सकते थे? हाँ, मेरी समझ में अवश्य कर सकते थे; परंतु ऐसा नहीं करने के दो कारण हो सकते हैं ( १ ) यह कि हिरण्यकश्यप संभवतः केवल उनके शरीर पर ही नहीं पर हृदय पर भी अधिकार चाहता था। और

यह अधिकार स्वीकार करना उनके लिए असंभव था। (२) यह कि संभवतः प्रह्लाद ने विचारा हो कि अन्यायपूर्ण आज्ञा-पालन से उसका दोष आज्ञा देने वाले पर जाता है इस कारण मेरे पिता पाप के भागी न कहीं हो जाय।

हृदय और आत्मा पर किसी आज्ञा का असर नहीं होता और हृदय-विहीन शरीर से आज्ञा मनवाकर आपको भी विशेष लाभ न होगा। इसलिए समझ लीजिये कि अब रामनन्दन बदलने वाला नहीं और उदार चित्त से अपने विरोधी पुत्र को अपनी सेवा करने का अधिकार दीजिये। केवल भाव का अनुगमन करना ही सेवा नहीं। पाँडव भीष्म के दुश्मन थे, पर पितामह का प्रेम उन पर अचल था।

मुझे यह स्पष्ट रूप से प्रकट करने में कोई हर्ज नहीं कि मैं अपनी इच्छा से, पिता की इच्छा के विरुद्ध आश्रम जा रहा हूँ। जिससे समाज में शिकायत न हो आप अवश्य करें। मैं १ ली जनवरी, १९२८ को आश्रम जाऊँगा।

विनीत सेवक
रामनन्दन

पुनश्च

सच्चे धर्म का ज्ञान तो मुझे नहीं है। मैं तो अभी सीख रहा हूँ कि धर्म क्या है! परंतु चाहे कोई-भी धर्म हो, उसका प्रधान उद्देश्य है मनुष्य को आध्यात्मिक विकास में सहायता देना। आपलोगों के जीवन में धर्म का जो रूप

मुझे दिखाई पड़ता है, उसके दो अंश हैं, पहला है शास्त्र विहित अंश और दूसरा है, उसके साथ लगा हुआ मनुष्य-कृत व्यवहार। मेरी समझ से मेरे व्रत में प्रथम अंश ही सहायक हो सकता है। दूसरे अंश को मैं धर्म का अंग नहीं मानता। उसे अपने मार्ग में विरोधी भी समझता हूँ, इसलिए उसे तोड़ने में हानि नहीं मानता। पर्दा प्रथा धर्म का अंग नहीं। मैं व्यभिचारिणी बनाने के लिए पर्दा नहीं तोड़ रहा हूँ। परन्तु इसका डर आप मुझे बताते हैं। सभी कामों में भय रहता ही है। घर में सोने समय चोर का भय रहता है, पर कोई घर में सोना नहीं छोड़ता। नाव पर डूबने का भय रहता है, परन्तु नाव पर लोग चढ़ते ही हैं। यह कहना कि जो चढ़ते हैं, वे इस विचार से कि वे डूब जाएंगे, गलत होगा। उसी प्रकार यह कहना कि व्यभिचारिणी बनाने के लिए मैं अपनी पत्नी को ले जा रहा हूँ गलत है। मेरा उद्देश्य यदि अच्छा है, तो अवश्य धर्म संगत भी है, चाहे इसमें कितने भी खतरे क्यों न हों।

विनीत सेवक

*रामनन्दन*

( ३ )

रघुनाथपुर
१४-१२-१९२७
(रात, १० बजे)

पूज्य पिताजी के चरण कमलों में,

एक विदेशी जाति की गुलामी इस देश का सत्यानाश कर रही है। इस गुलामी के अंदर आज कुल की मर्यादा और प्रतिष्ठा का कोई स्थान नहीं। जिस दिन हम गुलाम हुए, उसी दिन ये बह गईं। जबतक यह रोग दूर न

लेखक के पिता—स्वर्गीय राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

होगा, तब तक हमारे लिए चैन लेना असभव है। एकादशी आज हो या कल, इस पर पंडित लोग अपना जीवन लगा देंगे। पर देश के करोड़ों दुखियों, गरीबों के लिए आज उनके पास एक मिनट भी समय नहीं है। खादी तक पहनने को वे तैयार नहीं है। आपने जिन्हे क्षुद्र और नीच कहकर सबोधित किया है, उनका हृदय लाखों सनातन धर्मियों से ऊचा है। मैं उनका आदर करता हूँ। उनमें त्याग है, वीरता है। मुझे बड़ा दुःख है कि आप उनको इतना नीच सबोधित करते हैं और मेरे विचारों का कारण उनकी संगति मानते हैं। मैं इतना कच्चा अपने को नहीं समझता। मेरे सिद्धात आज से आठ वर्ष पहले ही निश्चित हो चुके थे। आपके साथ रहकर जब मैं लहेरियासराय में पढ़ता था तभी मेरे विचार बनने लगे थे।

मन्दिरों से मेरा विरोध नहीं है। मंदिर तो समाज के आवश्यक अंग हैं। पर उन मन्दिरों से पहले जो शांति की धारा निकलती थी, जिसमें संसार के ताप से तपित हृदयों को शांति मिलती थी, वह अब नहीं निकलती। हमारा धन, हमारी शक्ति उसी सच्चे वातावरण की उत्पन्न करने में खर्च होनी चाहिए थी, चाहे मंदिर फूस का ही क्यों न होता, पर ऐसा करने के बदले हम इन सबों को पत्थर और ईंटों में लगाते हैं। क्या यह इस बात का सबूत नहीं है कि हमारा ध्येय सच्चा मंदिर बनाना नहीं, बल्कि जिससे यश हो, ऐसा मंदिर बनाना है। राजा को पष्टांश इसलिए मिलता है कि वह देश का उपकार करे और उसमें से, जो कार्य वह करता है उसके बदले वेतन स्वरूप ही थोड़ा सा अंश ले सकता है। बाकी पर उसका अधिकार नहीं। ऐसा स्पष्ट विधान हमारे शास्त्रकारों ने किया है। महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि राजा को धरोहर के समान धन मिलता है। उसपर उसका व्यक्तिगत स्वत्व नहीं।

हमारे समाज में रसोई बनाना और खास समय पर, खास तिथि और खास दिन में पति से मिलना छोड़, स्त्रियों का कोई दूसरा काम नहीं है। वे केवल पुरुषों की सम्पत्ति मात्र हैं, हो सकता है यह सम्पत्ति बहुमूल्य हो। हमारे शास्त्र में उनका स्थान ऊँचा है। कोई भी धर्मकार्य उनके बिना हो नहीं सकता था। सीता वनवास के समय रामचन्द्र को यज्ञ के समय सीता की सोने की मूर्ति बनानी पड़ी थी। राजसिंहासन पर दरबार में दोनों साथ बैठते थे। उत्सवों पर दोनों साथ रहते थे। दशरथ जी के साथ कैकेयी युद्धस्थल तक

गयी और वरदान प्राप्त किया। मैं यह क्यों समझ लूं कि हमारे शास्त्र में उनका वहीं स्थान है जो आज दिखाई पड़ता है।

एक बात की बड़ी गलतफहमी हो गयी। हिरण्यकश्यप की तुलना मैंने कभी आपसे नहीं की और न करने का साहस ही कर सकता हूं। मेरा तो यही कहना है कि यदि रामायण का कथन सत्य है कि—

"अनुचित उचित विचार तजि जो पालहि पितु बैन,
तो भाजन सुख सुयश के बसहिं अमरपति ऐन।"

तो फिर प्रह्लाद ने अपने पिता का कहना क्यों न माना। अनुचित हो या उचित उन्हें अवश्य मानना चाहिए था। परन्तु हृदय प्रबल है। प्रह्लाद ऐसे व्यक्ति जब उसके झोंके से न बच सके तो हमलोग कौन हैं!

विनीत सेवक
रामनन्दन

पुनश्च—

आप पूर्ण विश्वास रक्खें, रामनन्दन (यदि कोई अघट घटना नहीं हुई तो) इस जीवन में दूसरी शादी नहीं कर सकता। मेरे विचार से कुलटा और व्यभिचारिणी स्त्री का भी त्याग उचित नहीं। स्त्री चाहे कैसी क्यों न हो, वह स्त्री ही है। परन्तु कितना प्रेम स्त्री और पुरुष में हो, इसका नाप कोई शास्त्र नहीं बता सकता। विशेष आराम, अत्यन्त सुख और अनेक दास एवं दासियों से युक्त रहते हुए भी स्त्री और पुरुष में प्रेम का रहना आवश्यक नहीं है। बाहर का देखने वाला कुछ भी परिवर्तन नहीं बता सकता, शास्त्र

स भी उनका मार्ग ठीक है, फिर भी प्रेम का कम हो जाना अस्वाभाविक नहीं। यहाँ शास्त्र की पहुँच नहीं है।

आपने जो बहुमूल्य सलाह स्त्री सहवास पर, शास्त्र की मर्यादा पर दी, है उससे मैं पूर्णतया सहमत हूँ। इस विषय में शास्त्र की व्यवस्था आवश्यक और लाभप्रद है और आप विश्वास रक्खें मैं इससे विशेष ही उसका पालन करता हूँ। परन्तु आपके अंतिम वाक्य स मैं सहमत नहीं हू। आपने लिखा है कि रजोधर्म के बाद निषिद्ध दिवस छोड़कर स्त्री के पास अवश्य जाना चाहिए। म इसे नहीं मानता और इस विषय पर जहा तक शास्त्र मैंने पढ़े हैं, उनमें एक मत नहीं है। मुझे ग्रन्थ का नाम तो याद नहीं पर किसी शास्त्र मे ही पढा था कि प्राचीन काल में एक सन्तानोत्पत्ति के बाद ऋषि-लोग, ३ वर्ष, ९ वर्ष अथवा १२ वर्ष बाद ही अपनी स्त्री के पास जाते थे। पर यह सब तो सिद्धात है। आप आशीष दे कि हमलोग पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकें।

आपने बहुत ठीक लिखा कि मजबूर करना साधारण स्वतन्त्रता को आघात करना है। मैं जब स्वयम् स्वतन्त्र होना चाहता हूँ, तो फिर अपनी स्त्री को ही स्वतन्त्रता नहीं दू तो मेरा सिद्धात क्या हुआ? म तो मानता हूँ और बार-बार मैंने कहा है कि यदि राजकिशोरी मास मछली भी खाना चाहे तो खा सकती है। वह पूर्ण स्वतन्त्र है। पर कहकर, छिपाकर नहीं। धोखा देना महान पाप है, इसस हृदय की शक्ति हीन होती है। यदि वह कहे कि पर्दा तोड़ना मैं ठीक नहीं मानती, मैं तोड़ना उचित नहीं समझती तो, कभी

में आग्रह नहीं करूँगा। मैंने उससे स्पष्ट कह दिया है कि तुम्हारी इच्छा तो चलो नहीं तो आराम से घर रहेंगे।

विनीत सवक

रामनन्दन

( ४ )

रघुनाथपुर

२८–१२—३८

परम पूज्य पिताजी के चरण कमलों में,

मुझे मालूम हुआ कि मेरे प्रस्ताव के कारण आप बहुत क्षुब्ध हैं। स्पष्ट लिखने और कहने पर भी आपने अपना विरोध नहीं उठाया और वि गरी की एक नयी समस्या उत्पन्न कर दी है। मैं समझता हूँ कि मैंने ‍ विचार आपके सामने स्पष्ट रख दिये हैं। मैंने यह भी स्पष्ट शब्दों में दिया है कि इस प्रश्न के साथ मेरा कितना गहरा संबंध है। मेरे जीवन मार्ग एक अजीब प्रकार के सन्यास और गार्हस्थ्य का मिश्रण है। मेरे अ गृहस्थवाद में स्त्री का स्थान कितना ऊँचा है, यह भी मैंने स्पष्ट कर दिया कभी-कभी जीवन के सारे कार्य-कलापों का केन्द्र वही हो जाती है, और उ अयोग्यता से उसके आधार पर बना हुआ जीवन का महल कितना कम और चिन्ताजनक हो जाता है, यह भी स्पष्ट ही है। इधर कुछ दिन कितने कष्टों का अनुभव मैं कर रहा हूँ इसका वर्णन मैं कैसे कर सकता मैंने काफी मनन और विचार के बाद पर्दा तोड़ने को ही ‍ मार्ग पाया है। मैंने ऐसा करना जब चाहा, आपकी राय न

मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि मेरे जीवन का सर्वनाश उपस्थित है। मैंने बीच के रास्ते निकलने के लिए भी भरपूर प्रयत्न किये। बृजकिशोर बाबू ने मुझसे कहा कि आपके पिताजी को कोई आपत्ति न होगी यदि आप बाहर ही अलग मकान लेकर रहें अथवा यहीं अलग मकान बनाकर पत्नी की शिक्षा का प्रबंध करें। यद्यपि यह मुझे स्वीकार न था पर बृजकिशोर बाबू के कहने पर इस ढङ्ग पर तय करने का वचन मैंने उन्हें दे दिया।

पीछे की घटनाओं ने मेरे हृदय में सदेह पैदा कर दिया है। मॅंझवा के बाबू साहब अपने साथ माघ सप्तमी का दिन लाये हैं, यह मालूम कर मैं चौंक उठा। क्या आप चाहते थे कि मैं इधर आश्रम देखने जाऊँ और उधर आप मेरी स्त्री को मॅंझवा रवाना कर दें; जिससे कुछ दिनों के लिए यह प्रश्न टल जाय। यदि यही था, तो मैं इसे कपट मानता हूँ और ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि ऐसा न हो पाया। यदि ऐसा होता तो मैं क्या करता और स्थिति कितनी भयङ्कर हो जाती, यह विचार करना कठिन है।

परन्तु इन सबों के बीच में एक भयङ्कर तथ्य प्रकट हुआ है। वह यही है कि मैं विश्वास का पात्र नहीं हूँ। इस आंदोलन में मैं पहले से ही विरोध की आशा रखता था। परन्तु मैं यह नहीं जानता था कि मेरे भावों का निरादर इस प्रकार किया जायगा।

अब मेरे सामने से अन्धकार हट गया है। मैंने स्पष्ट देखा कि मेरे पूज्य पिताजी और पितासम पूज्य बड़े भाई मेरा विरोध ही नहीं कर रहे हैं पर मुझ पर अविश्वास भी करते हैं। शायद अभी तक इतनी योग्यता और

सयम का प्रदर्शन मैंने नहीं किया, जिससे विरोध करते हुए भी मुझ पर दूसरे लोग विश्वास करें। मैंने पूरा प्रयत्न किया कि आपके हृदय में बैठा सकूं कि आपके एक विशेष मत का विरोध करते हुए भी मैं आपके प्रति पूर्ण श्रद्धा रख सकता हूं। पर मैं असफल रहा। अब मेरे सामने का मार्ग स्पष्ट है। मुझे तपस्या करनी होगी और इसका सबूत देना होगा कि मैं आपके विश्वास के योग्य हूं।

आज इससे बढ़कर तपस्या मैं क्या कर सकता हूं कि मैं आपकी आज्ञाओं का पूर्ण पालन करूं। मैं जानता हूं कि मेरी जिन्दगी इसमें बर्बाद हो जायगी। परन्तु आपको यदि इसीमें आनन्द है तो यही हो।

अन्त में केवल एक बात की प्रार्थना मैं करना चाहता हूं, वह यह कि केवल दो दिन के लिए भी आप एक बार साबरमती हो आने की आज्ञा मुझे दे दें। गांधी जी से मिलना मेरे लिए आवश्यक है। उससे हमें अवश्य कुछ संतोष हो जायगा।

विनीत सेवक

रामनन्दन

## महात्मा गांधी का वरद-हस्त

इस वेदना और संकट की घड़ी में गांधी जी की सहानुभूति ही सबसे बड़ा सहारा थी। साबरमती से मैं निम्नलिखित पत्र लेकर लौटा—

साबरमती
२५ १-२७

भाई राजेन्द्र प्रसाद जी मिश्र,

आपका सुपुत्र मेरे पास आया है और कहता है कि यद्यपि वह और उसकी धर्म पत्नी पर्दा छोड़ना चाहते हैं आप उसका विरोध करते हैं। अपना धर्म क्या है मुझको पूछता है। मैंने कहा है आपकी आज्ञा का आज तो पालन करें और पत्नी के लिये एक शिक्षिका रखे। शिक्षिका यहा से भेजी जा सकती है मेरी तो आपको सलाह है कि आप दम्पति को अपने इच्छानुसार चलने दें। इस युग में पर्दा निभ नहीं सकता है न आवश्यक है। प्राचीन समय में पर्दा की बुरी प्रथा न थी।

आपका—
*मोहन दास गांधी*

इस पत्र ने फिर से उथल-पुथल पैदा कर दिया और आगे जो हुआ वह शुरू में ही बताया जा चुका है। परन्तु गांधी जी हर कदम पर प्रेरणा और आदेश ही नहीं, क्रियात्मक सहयोग भी देते रहे। २८ जून, १९२८ को 'यङ्ग इन्डिया' में उन्होंने निम्नलिखित अग्र लेख लिखा:—

"बिहार के प्रमुख नागरिकों और महिलाओं ने एक अपील निकालकर, पर्दा प्रथा के पूर्ण-बहिष्कार की सलाह दी है। ५० से ज्यादा महिलाओं का इस पर हस्ताक्षर है, इससे यह विश्वास पैदा होता है कि यदि काम जोरों से चला तो, पर्दा बिहार में भूतकाल की चीज हो जायगी।"

"मैं स्वय बिहार में पर्दा प्रथा से पैदा होने वाली बुराइयों को जानता हूँ। यह आन्दोलन पूरे तौर पर समयानुकूल है।"

"इस आन्दोलन का इतिहास अनोखा है। रामनन्दन मिश्र, एक खादी कार्य्यकर्ता, अपनी पत्नी का पर्दा के अत्याचार से उद्धार करना चाहते थे। जब उनके परिवार वालों ने उनकी पत्नी को आश्रम नहीं आने दिया तो, वे आश्रम से ही दो लड़कियों को अपनी पत्नी की संगिनी के तौर पर ले गये। मगन लाल गांधी की पुत्री, राधा बहन, उसकी शिक्षिका बननेवाली थीं। राधा बहन के साथ स्वर्गीय दलबहादुर गिरि की पुत्री दुर्गा देवी भी गई। परन्तु उसके माता-पिता ने इनके कार्यों का विरोध किया। लड़कियाँ बहादुरी से उनका मुकाबिला करती रहीं। इसी बीच मगन लाल गांधी लड़कियों को सभी बाधाओं का सामना करते रहने का साहस दिलाने वहां गये। राधा बहन जिस गाँव में काम करती थी, वहां वे बीमार पड़े और पटना आकर मर गये। इसलिये बिहार के मित्रों ने इसे अपनी इज्जत का सवाल बना लिया है और पर्दा के विरुद्ध उन्होंने युद्ध ठान दिया है। राधा बहन रामनन्दन मिश्र की पत्नी को आश्रम ले आई। इससे और भी उत्तेजना फैल गई है और उसके पति ने अपने को, पहले से भी ज्यादा उत्साह से, इस काम में लगा दिया है। इसलिये व्यक्तिगत भावना से संयुक्त यह आन्दोलन फैलेगा, ऐसी आशा मालूम पड़ती है। इस आन्दोलन के प्रधान हैं बिहार के तपे हुए सिपाही बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद। मुझे याद नहीं कि एक भी आन्दोलन उनके नेतृत्व में असफल हुआ हो।"

"उपर्युक्त अपील में ८ जुलाई निश्चित की गई है, जिस दिन इस आन्दोलन का प्रारम्भ होगा। पर्दा प्रथा, बिहार की आधी मानवता को सामाजिक सेवा से ही नहीं बल्कि बहुत स्थानों पर उन्हें प्रकाश और हवा से भी वंचित रखती है। जितना जल्द लोग समझ जायें कि बहुत सी सामाजिक बुराइयाँ हम स्वराज की ओर बढ़ने नहीं देतीं, उतना ही ज्यादा वेगवान लक्ष्य की ओर हमारी प्रगति होगी। समाज सुधार को स्वराज के बाद के लिए रोक कर रखना, स्वराज के अर्थ को नहीं समझना है। यदि हम अपने आधे अंग को निश्चेष्ट बनाकर रखते हैं, तो न हम अपनी रक्षा कर सकेंगे न दूसरे राष्ट्रों के मुकाबले में खड़े हो सकेंगे।

"इसलिये मैं बिहार के नेताओं को पर्दा प्रथा के विरुद्ध संघर्ष प्रारम्भ करने के लिये बधाई देता हूँ।"

दूसरा

# समाज से विद्रोह

*मगन-आश्रम*

परिवार से विद्रोह में इतनी कटुता इसलिये थी कि समाज मेरे परिवार के साथ था। यों तो सारा प्रान्त ही पिछड़ा था, परन्तु उत्तर बिहार खास तौर पर, रूढ़िवाद और कट्टरपंथ का अखाड़ा था; जिसके प्रधान स्तम्भ थे जाति भेद और स्त्री-पराधीनता। इन बन्धनों में जकड़ कर धर्म्म भी मर रहा था और समाज भी। परन्तु लाखों, करोड़ों मानवों के हृदय में पैठी हुई इन भावनाओं को कौन हटा सकता था?

इधर अंग्रेजी शिक्षा, रेल की सफर, शहरों का सम्पर्क धीरे-धीरे कट्टरता की जड़ को खोद रहे थे। युवकों के व्यवहार में प्रवंचना और अंतर में द्वन्द्व उठ रहे थे। बाहर के माप दण्ड और थे, घर तथा गाँव के और। अन्तर में क्षोभ और वेदना थी, परन्तु उनके निराकरण का रास्ता पकड़ने का

साहस युवकों में नहीं था। अपने विचारों पर विश्वास रखने की कीमत हर परिवर्तन-युग के प्रगतिशीलों को देनी पड़ा है। ऐसे युवक उत्तर बिहार में तैयार थे, परन्तु प्रश्न था, घर और समाज से बहिष्कृत होकर, वे क्या करें? कहाँ जायें और कहाँ रहें?

इसी कमी को पूरा करने के लिये गाँधीजी की सलाह से स्वर्गीय मगनलाल गाँधी की स्मृति में मगन-आश्रम की स्थापना हुई। लहेरियासराय से ५ मील दूर स्थित मभौलिया गाँव के एक युवक श्री जगदीश चौधरी ने इसके लिए अपनी सब जमीन दे दी। गाँव से बाहर १० कट्ठे की एक टुकड़ा जमीन खरीद कर १९२९ की जनवरी में मगन-आश्रम की स्थापना हुई। बाँस और लकड़ी कन्धों पर ढोकर हम स्वयं ले आये और अपने श्रम से ही हमने आश्रम का पहला घर खड़ा किया। उस समय, श्री जगदीश चौधरी और उनकी पत्नी कमला देवी, पिपरा ग्राम के ब्रजबिहारी कुँवर, मभौलिया के श्री नारायण चौधरी, उनकी पत्नी जगदम्बा देवी, नारस चौधरी और उनकी पत्नी सावित्री देवी, लेखक और उनकी पत्नी राजकिशोरी कुल ९ व्यक्ति आश्रम के परिवार में शामिल हुए।

आश्रम में न जाति-भेद बरता जाता था न स्त्रियाँ पर्दा करती थीं। ठेठ मिथिला के मध्य ऐसे केन्द्र का होना विद्रोह के झंडे को गाड़ना था। परन्तु सबसे दुखद बात थी राजनीतिक नेताओं का उपेक्षा और कुछ का खुला विरोध। उनकी वही पुरानी १८९० वाली दलील थी—राजनीति से सामाजिक सुधार के आन्दोलन को अलग रखे बिना राजनीतिक लड़ाई कमजोर

होता है। समस्तीपुर सवडिवीजन के इलाकों में तो हमें काम करने से रोका गया। रोकनेवाले स्वय काम करते नहीं थे। यह उनसे कहा जाता तो कहते-हमारा इलाका परती रहेगा, परन्तु मगन आश्रम वाले नहीं जायँ।

हमारे सौभाग्य से विहार के तपस्वी नेता बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद हमारे साथ थे और गांधाजी का आशीर्वाद था। गाँधीजी बराबर पत्र लिख कर हमें साहस और सान्त्वना देते। नीचे इनके पत्रों के कुछ उद्धरण दे रहा हूँ।

भाई रामनन्दन,

सिंध की मुसाफिरी में तुम्हारा खत मिला। इस खत को मैं ट्रेन मे लिख रहा हूँ। तुम लिखते हो, उस हालत में सत्याग्रह तो हो सकता है, परतु यहाँ से बतलाना मुश्किल है। मुख्य वस्तु यह है कि हमारे में द्वेष और क्रोध नहीं होना चाहिये।

१२ २-२९ ई०। बापू के आशीर्वाद

भाई रामनन्दन,

तुम्हारे खत आते रहते हैं। निराशा को स्थान ही मत दो। हम प्रयत्न करें, फल भगवान पर छोड़े।

१४-५-२९ ई०। बापू के आशीर्वाद

भाई रामनन्दन,

तुम्हारा पत्र मिला है। ... मेरा उत्तर रह भी जाय तो भी तुम्हारी प्रवृत्ति का बयान देते रहना।

सावरमती बापू के आशीर्वाद
१-१२-२९ ई०।

सबसे कठिन समस्या थी; ऐसे विद्रोही केन्द्र का आर्थिक प्रबन्ध करना। जाति भेद विरोधी, पर्दा विरोधी और सरकार विरोधी केन्द्र को धन कौन दे? फिर भी कुछ लोग मदद करने वाले निकल ही आये थे। लहेरियासराय में एक आर्य समाजी 'नमस्ते महाशय' के नाम से मशहूर थे। वे गुदड़ीपर तरकारी बेचनेवालों से तरकारी और एक-एक पैसा इकट्ठा कर हर महीने थोड़ा सा चावल, दाल, तरकारी, और पैसे ले आते।

### *समाज का क्रोध*

सारी कठिनाइयों के बावजूद आश्रम की ओर नवयुवक आकर्षित होने लगे। ज्यों ज्यों नवयुवकों का आकर्षण बढ़ता गया, समाज का कोपानल भी तीव्र होता गया। समाज ने पूर्ण सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार की घोषणा कर दी। आसपास के हर घर वाले इसकी सावधानी रखने लगे कि उस घर का कोई लड़का आश्रम न चला जाय। बच्चे भी यह भेद जान गये थे, उन्हें पिता-माता पर दबाव डालना होता तो वे एलान करते 'मैं मगन आश्रम चला'। बस क्या था, तुरत परिवार वाले उनकी माँग स्वीकार कर लेते। कोई आश्रमवालों से सम्पर्क नहीं रखता। कुछ दिनों तक तो गाँव के कुएँ पर पानी भरने से भी हमें रोक दिया गया। दूर हरिजनों की बस्ती से हम पानी भरकर कन्धों पर लाते। स्वयं हरिजन भी हमें अछूत मानते थे। वे भी हमारा छुआहुआ खाना नहीं खाते।

परन्तु इस जीवन में एक मस्ती थी, एक आनन्द था। कई महीने ऐसे भी गुजरे, जिनमें हमें नमक-चावल पर गुजारा करना पड़ा था। प्रति-

व्यक्ति, खर्च भोजन-वस्त्र सब लेकर पाच से सात रुपये तक को होते थे। मैं लकड़ी काटता, पानी भरता, और राजकिशोरी आटा पीसती तथा खाना बनाती। जो हमें मिलता उसी में हम प्रसन्न रहते। दूसरे साथी भी इसी तरह बारी-बारी से सभी काम करते।

अनाशक्ति, संघर्ष और गांधी विचार धारा पर मगन आश्रम का जीवन आश्रित था। साबरमती आश्रम का एक पाकेट संस्करण होने के साथ साथ साबरमती से कहीं कठिन जीवन हमें बिताने पड़ते थे। यद्यपि इस समय समाजवादी लहर नहीं उठी थी और हममें से कोई समाजवादी भी नहीं था, परन्तु गांधी विचार धारा की आध्यात्मिक प्रवृत्ति के कारण हमने कुछ महीने भोजन एक भंडार से करने के अलावे कपड़ों का भंडार भी एक कर दिया। फूस के एक मकान में, बांस के एक मचान पर, धोतियां और और कुर्ते रहते। हर सदस्य उसमें से जो जरूरी होता, लेता और गन्दे कपड़ों को साफ कर रख देता।

सुबह अक्सर कंधों पर खादी लेकर हम दूर गांवों के लिए निकल पड़ते। अमौलिया से पैदल १३ माइल बहेड़ी जाना और फिर दूसरे दिन पैदल वापस आना तो सप्ताह में दो बार होता ही था। खादी बिक्री का कमीशन हमारे भोजन का मुख्य सहारा था। गांधी-जन्म दिवस के अवसर पर ऐसी ही फेरी के सिलसिले में मेरी पत्नी राजकिशोरी, श्री नारायण चौधरी और जगदम्बा देवी मुसलमानों की एक बस्ती पुरुखोपट्टी में चली गई। वहाँ के प्रधान महम्मद बाबू ने काफी खादी खरीदी। उन्होंने अपने यहाँ भोजन का

मन्दा मे। गाधी जा ने 'यग इडिया' में फिर एक सम्पादकाय टिप्पणी भा लिखी।

इसके बाद ही देश का राजनीतिक वातावरण गर्म होने लगा और सरदार वल्लभ भाई स्वय ९ दिसम्बर, १९२९ को मगन-आश्रम आये। उन्होंने दरभगा शहर की आम सभा में नागरिकों को भर्त्सना की कि उनके पास के गाँव म नवयुवक ऐसे कष्ट से गुजर रहे हैं और वे इस ओर ध्यान नहीं देते। उनके व्याख्यान से कुछ लोगों का ध्यान इस ओर गया और शहर से कुछ रुपये भा आये।

## राष्ट्रीय सग्राम में आहुति

सरदार के आगमन के साथ ही नये राष्ट्रीय सग्राम की तैय्यारी शुरू हो गई और इसके साथ ही सारा वातावरण बदल गया। आश्रम के जन्म से ही सामाजिक सघर्ष के साथ-साथ काग्रेस-सगठन का काम भी हम करते थे। *शुरू के दिनों में ही, जिला-काग्रेस-समिति पर उपस्थित सकट से उसे* बचाने का भार आश्रम के ऊपर पड़ा। प्रान्तीय काग्रेस के सभापति श्री राजेन्द्र प्रसाद जी ने ३० हजार सदस्यता का अश दरभंगा जिले के लिये मुकर्रर किया था। दो सप्ताह समय रह गया था, परन्तु आधे सदस्य भी नहीं बन पाये थे। श्री राजेन्द्र प्रसाद जी का तार आया और स्वय बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद जी ने आकर इसे पूरा करने का आग्रह हमसे किया। दो सप्ताह हम इसी काम में लगे रहे और काग्रेस की सदस्यता का अश पूरा हो गया।

भी आग्रह किया। भोजन का समय था, वे क्या करते? कोई कारण उनके पास इन्कार करने के लिए नहीं था। उन्होंने उनका आतिथ्य स्वीकार कर लिया।

एक सप्ताह के अन्दर मुसलमान के घर इनके भोजन करने की खबर आस पास के गावों में अतिरंजित होकर फैल गई। फिर क्या था, समाज के कोपानल में घी पड़ा। हमें भी आत्म-रक्षा के लिये आस पास के नवयुवकों को इकट्ठा करना पड़ा। हमारी योजना थी, निकट के सभी गाँवों के प्रमुख घरों के युवकों को आश्रम में एक साथ भोजन करा देना, जिससे सभी परिवार में हमारा पाँचवा दस्ता पहुँच जाय।

सभी परिचितों से चावल, दाल, सब्जी इकट्ठा कर एक प्रकाड भोज का आयोजन हमने आश्रम के पीछे वाले आम के बाग में किया। भोज तो नाममात्र का था, चावल, दाल और उबाला हुई तरकारी; परन्तु, हमारे सौभाग्य से श्री राजेन्द्र प्रसाद जी भी ( वर्तमान राष्ट्रपति ) उसमें शामिल हुए, जिससे इसका महत्व बहुत बढ गया। समाज का क्रोध और तीव्र हुआ और उन्होंने हमारे साथी जगदीश चौधरी तथा गणेश प्रसाद को कूँए पर पीटा। चश्मा फोड़ डाला, कपड़े फाड़ डाले, परन्तु इतने से भी समाज का क्रोध शांत न हुआ। कुछ नेता भी विरोध करते रहे। इन सबों का विस्तृत विवरण गांधी जी को मिलता रहता था। गाधी जी ने एक व्यक्तिगत पत्र बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद को लिखा और उनसे आग्रह किया कि वे कांग्रेस के सभी साथियों को समझावें कि आश्रम में जो कुछ हो रहा है उनकी रजा

मन्दों से। गांधी जी ने 'यंग इंडिया' में फिर एक सम्पादकीय टिप्पणी भी लिखी।

इसके बाद ही देश का राजनीतिक वातावरण गर्म होने लगा और सरदार वल्लभ भाई स्वयं ९ दिसम्बर, १९२९ को मगन-आश्रम आये। उन्होंने दरभंगा शहर की आम सभा में नागरिकों की भर्त्सना की कि उनके पास के गाँव में नवयुवक ऐसे कष्ट से गुजर रहे हैं और वे इस ओर ध्यान नहीं देते। उनके व्याख्यान से कुछ लोगों का ध्यान इस ओर गया और शहर से कुछ रुपये भी आये।

## *राष्ट्रीय-संग्राम में आहुति*

सरदार के आगमन के साथ ही नये राष्ट्रीय संग्राम की तैयारी शुरू हो गई और इसके साथ ही सारा वातावरण बदल गया। आश्रम के जन्म से ही सामाजिक संघर्ष के साथ-साथ कांग्रेस-संगठन का काम भी हम करते थे। शुरू के दिनों में ही, जिला कांग्रेस-समिति पर उपस्थित संकट से उसे बचाने का भार आश्रम के ऊपर पड़ा। प्रान्तीय-कांग्रेस के सभापति श्री राजेन्द्र प्रसाद जी ने ३० हजार सदस्यता का अंश दरभंगा जिले के लिये मुकर्रर किया था। दो सप्ताह समय रह गया था, परन्तु आधे सदस्य भी नहीं बन पाये थे। श्री राजेन्द्र प्रसाद जी का तार आया और स्वयं बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद जी ने आकर इसे पूरा करने का आग्रह हमसे किया। दो सप्ताह हम इसी काम में लगे रहे और कांग्रेस की सदस्यता का अंश पूरा हो गया।

परन्तु हमारा मुख्य दैनिक कार्य्य था रचनात्मक। इसके सगठन का हमारा अपना तरीका था। मैं गावों में जाकर सभा करता, रात को मैजिक लालटेन दिखाता; राजकिशोरी आगन में स्त्रियों को इकट्ठा कर समझातीं। बाद में दूसरे साथी खादी और रुई लेकर जगह-जगह बैठ जाते और केन्द्रों का सगठन करते। इन केन्द्रों का मगन-आश्रम से नियमित सम्बन्ध रहता, केन्द्र सचालक प्रति सप्ताह विवरण भेजते कि कितने खादीधारी बने, कितने चर्खे चले, कहाँ कहाँ गाव की सफाई हुई इत्यादि। ये केन्द्र भी मगन-आश्रम के नियमों का पालन करते। इन केन्द्रों के आस [illegible] त्रकों का समूह इकट्ठा होने लगा।

मगन-आश्रम में इन केन्द्रों के [illegible] के के पैल और रुई देने के काम के सा[illegible] श्री महावीर शर्मा वैद्य-एक [illegible] आश्रम के सदस्य बन गये। शाम वे गरीबों को देखते। बाकी सदस्य वासी धीरे-धीरे मरीज की सेवा यह काम फिर केन्द्रों में भी फैला।

धीरे-धीरे इन केन्द्रों का सनगर, समस्तीपुर, रोसड़ा आदि शाखाएं जिले भर में काम करने [illegible] गये। इन्हें शिक्षण देने के लिये १ली

दल का शिक्षण-शिविर आश्रम में खोला गया, जिसमें महिलाओं का भी एक दल था। दरभंगा शहर के श्री रामबहादुर गुप्त की लड़की सुभद्रा और दूर के अन्य गावों की महिलाएं भी इसमें शामिल हुईं। स्त्रियों का जत्था जब सुबह शान कवायद करता और शाम को मार्च करते हुए गावों की सड़कों पर निकलता, तो गाँव के लोग अवाक होकर देखते—कहते; दुनिया किधर जा रही है! उनके दिल में कलियुग के आने में कोई सन्देह बाकी नहीं रहता।

शिविर समाप्त होने पर महिलाओं और पुरुषों का एक मिश्रित जत्था गाँवों में पैदल दौरे के लिये निकल पड़ा। इसी जत्थे ने सदर सब डिवीजन में राष्ट्रीयता की भावना जगाई। जहाँ यह जाता, ग्राम सफाई करता, नये स्वयंसेवकों की भर्ती करता और रात में हरिजनों और स्त्रियों में प्रचार करता। इस जत्थे के द्वारा मार्च के अन्त तक ७०० स्वयंसेवक भर्ती हुए। इन्हीं स्वयंसेवकों में से नये जत्थे बने, जो अप्रैल १९३० में नमक बनाने निकले। इस समय तक गाँवों का रुख पूरे तौर पर बदल चुका था। गालियों का स्थान फूल माला और जय-जयकार ने ले लिया था। परन्तु, सरकार का रुख उग्र हो गया था। १९३० के १७ अप्रैल को मैं गिरफ्तार हुआ और समाज विद्रोह का प्रतीक, मगन-आश्रम विद्रोह की ज्वाला भड़का स्वयं सरकार के कोपानल में धू-धू कर जल उठा।

# परिशिष्ट

पिछले पृष्ठों में वर्णित मगन-आश्रम एक दिन बिखर गया। सिर्फ १० कट्ठा जमीन और उस समय उसमें काम करने वालों के हृदय के भाव उसकी यादगार में रह गये हैं। परन्तु यह दुखद प्रसंग इस पुस्तक का विषय नहीं। सिर्फ पटाक्षेप स्वरूप जो पत्र मैंने आश्रम-बन्धुओं को लिखा था, उसे इस जीवन-धारा के परिचय के लिये ज्यों का त्यों दे रहा हूँ।

लहेरियासराय
५. ३-३४

आश्रम-बन्धुओ !

गांधी सेवा संघ की सहायता बंद होने से आज जो नई परिस्थिति पैदा हो गई है, उस पर गम्भीर विचार करना अत्यंत आवश्यक हो गया है। जिस संघर्ष से यह सहायता बंद हुई है, उसके कारण के मूल में मैं ही हूं। और इस कारण का सार है मेरा श्री............को प्रसन्न न रख सकना। इस प्रसन्न न रख सकने का कारण मैं ठीक-ठीक नहीं समझ सका हूं। आश्रम के सदस्यों ने किसी नैतिक-धर्म का उल्लंघन किया हो, देश की

सेवा में आगे नहीं आये हों, गांधी जी के आदर्शों के विपरीत चलने की चेष्टा की हो, ऐसा कोई भी कारण मुझे ढूढ़ने से भी नहीं मिलता। इसलिये जहां तक सार्वजनिक कार्य का सम्बन्ध है, आश्रम या मैंने कोई दोष किया हो ऐसा मालूम नहीं होता। इस कारण मेरा हृदय यही कहता है कि आश्रम की सहायता बन्द होने में कोई सार्वजनिक कारण नहीं है। इसके मूल में व्यक्तिगत प्रसन्नता या अप्रसन्नता है।

आश्रम के हित की दृष्टि से आज तक अपमान के कितने प्यालों को मैं पी चुका हूँ और बराबर ······· की इच्छा के सामने सिर झुकाया है। पर मालूम होता है आज मेरा प्रयत्न व्यर्थ गया। मैं इसे अपने जीवन की एक प्रधान असफलता मानता हूँ। और यदि कोई हमारा साथी इस असफलता को मेरा अयोग्यता मानकर मेरा साथ छोड़ दे, तो मैं उसे दोष नहीं दूंगा। कारण मैं मानता हू, सम्भव है मेरे स्थान पर कोई दूसरा रहता तो ············की प्रसन्नता हासिल कर सकता था। आश्रम को स्थापित हुए आज ५ वर्ष हो चले। इस बीच हमारे आपस के सम्बन्ध में अनेक परिवर्तन हुए हैं। शुरू शुरू में अनेक के ऊपर मेरी सच्चाई तथा योग्यता का जादू सवार हो गया था। धीरे-धीरे वह टूट गया। लोग जिसे खरा सोना समझते थे आज उसमें उन्हें मैल दीख पड़ता है। अनेक यहा मुलम्मा ही देख रहे हैं। मेरे हृदय में आज इसका दुख नहीं है। श्रद्धा का आसन जो मेरा नहीं था उस पर भूल से बिठा दिया गया था। मेरे इस तथा-कथित पतन से मेरे एक निकट व्यक्ति को चोट लगी। पर मैं तो इसे अच्छा ही मानता

हूँ। जो आसन मेरा है वहीं रहने में मेरी शोभा है।

संसार जिसे पाप, अनीति कहता है उसकी कमी मेरे जीवन में नहीं। उनमें से यदि एक-दो का ही पता कुछ को लगे, तो वे इस पाप की दुर्गन्ध से मुँह फेर लेंगे।

मेरे जीवन वृक्ष के दो सुन्दर फूल हैं प्रेम तथा साहसिकता। इन्हीं को रंग-बिरंगे तथा सुगंधित बनाने में ही मेरे जीवन की पहचान है। मेरे सारे सम्बन्ध इन्हीं को लेकर बने हैं। इन फूलों को बनाने में पाप या पुण्य, अच्छी या बुरी जैसी खाद की आवश्यकता हुई है, मैं डालता गया हूँ।

पर इन फूलों की दृष्टि से भी मैंने अनेक भयंकर दाग किये हैं और उन को जब मैं देखता हूँ, मेरा मस्तक लज्जा से नत हो जाता है। इन फूलों की कोमल पंखुड़ियां समय समय पर झुलस गयी हैं। पछता पछता कर अपने हृदय के आंसुओं से इन्हें हरी भरी करने का प्रयत्न किया है।

इन दो फूलों की दृष्टि से मैं आगे ही बढ़ा हूँ, यही मेरा सन्तोष है। इस गन्दी राजनीति के भीतर रह कर भी अपने को किसी दल में नहीं फँसाने को मैं अपने जीवन की प्रधान साहसिकता मानता हूं। और जब मैं वर्तमान काल में अपने से अप्रसन्न व्यक्तियों का प्रेम हासिल कर लूंगा, मैं समझूंगा, मेरे जीवन के दोष धुल गये।

आश्रम का एक निजी विशेषत्व है। इस संकट के अवसर पर उस विशेषत्व की रक्षा करते हुए, जिन्होंने विरोध किया, उनके प्रति प्रेम की भावना रखते हुए, हम इस संसार में रह कर देश की सेवा करें, यही हमारा

कार्यक्रम है।

आश्रम के सदस्यों को अब धीरे धीरे स्वावलम्बी बनना होगा। उन्हें अपने ही भीतर शक्ति का स्रोत ढूँढना होगा। साथ ही हम एक हैं इस भावना को भी जाग्रत रखना है। दुख और करुना प्रकृति की देनों में से हैं। ये हमें नीचे क्यों ले जायें? दुख का प्याला पी कर हम मस्त रहें, उसका मधुर आस्वाद लें, यही मेरी प्रार्थना है।

हम में से कोई भी टमटम-घोड़ा खरीद कर हाके तो वह आसानी से ३० रु० महीना कमा सकता है। राजनीतिक दलदल में फसे हुए लोगों की मनमानी के सामने नत होकर रहने से कहीं अच्छा है आश्रम के सदस्यों का इक्कावानी करना। जिस दिन टमटम लेकर हम दरभंगा शहर में निकलेंगे वह दिन हमारे गौरव का दिन होगा। यह सच्चा सत्याग्रह का तथा जीवन्त स्वाभिमान का चिन्ह होगा।

विनीत बन्धु

रामनन्दन

—रामनन्दन मिश्र—

# सरकार से विद्रोह

## गिरफ्तारी

सरकार से विद्रोह की कहानी लबी—३० वर्षों में फैली हुई है और इसका अत कब होगा, कौन कह सकता है। सरकार का होना ही मानव समाज की कमजोरी है। यों तो सभी सरकारें क्रूर-हिंसा और दमन पर आश्रित रहती हैं, परन्तु स्वेच्छाचारी विदेशी सरकारों का तो सभ्य मानव-समाज में कोई स्थान ही नहीं होना चाहिए।

सरकार से विद्रोह की लम्बी कहानी में से केवल १९४२ के तीन प्रसग—गिरफ्तारी, पलायन और लाहौर किले का उत्पीडन—का ही सक्षिप्त विवरण इस अध्याय में मैं उपस्थित कर रहा हूँ।

९ अगस्त की सुबह को 'करो या मरो' का सदेशा देकर गांधी जी जेल चले गये। उसी दिन, बम्बई में जो साथी बच रहे थे, उनकी बैठक हुई

था, जो किसी को भी हमारी योजना का भंडाफोड़ करने को ललचा सकता था। आज भी लोगों का एक बड़ा समूह है, जो यह विश्वास ही नहीं करता कि हमलोग किसी जेल अधिकारी की मदद के बिना बाहर निकले थे। किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि हमलोगों ने न तो मदद चाही और न किसी जेल कर्मचारी से किसी प्रकार की मदद मिली। हमलोगों ने अपने ही कौशल पर भरोसा किया था। हमलोगों ने जेल का सबसे घना अंधकारमय कोना ढूंढा और उस स्थान पर सिपाही के फिर वापिस आने के समय का हिसाब ठीक निकाल लिया। लगभग इसमें उसे ८ मिनट लगते। इसलिये, यदि सिपाही का नजर को बचाना था तो यह काम ५-६ मिनट में ही पूरा हो जाना चाहिये था।

जेल की दीवार १७ फीट से कुछ ऊँची थी। यदि हमलोगों में से कोई ऊपर पहुँच पाता तो हमलोगा की समस्या का पूरा समाधान हो जाता। परन्तु न तो खभा ही मिला और न कोई सीढ़ी ही। इसलिये ऊपर पहुँचने का एकमात्र साधन आदमियों की बनी सीढ़ी ही रहा। इसका अभ्यास हमलोग प्रत्येक सन्ध्या को करते थे जिससे कि अन्तिम क्षण में किसी प्रकार की गड़बड़ा न हो। जेल अधिकारियों से हमलोगों को ६ नई धोतियाँ मिली थीं, उन्हीं से हमलोगों ने दो-दो फुट पर गाँठ बाधकर एक रस्सा बना लिया था। जेल की दीवार से सटाकर एक टेबुल रखा गया। [illegible] योगेन्द्र शुक्ल खड़े होगये। उनके कन्धे पर हमारे एक साथ [illegible] पर बड़ी कठिनाई से श्री सूर्यनारायण सिंह बैठे। [illegible] कमर में
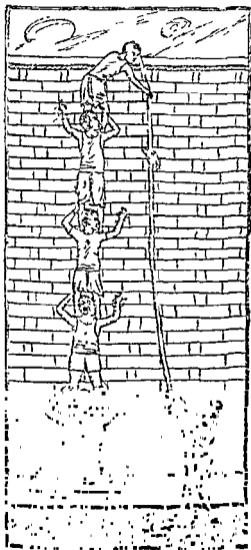
उस रस्सी का एक छोर बांध दिया गया। सूर्य्य-नारायण बाबू ऊपर पहुँचकर उस पार उतर गये और उन्होंने रस्सी का एक छोर पकड़ लिया। हमलोग अन्दर जमीन पर थे। शीघ्र ही रस्सी का दूसरा छोर पकड़ बाकी लोग दीवार पर चढ़ उस पार उतर गए।

श्री जयप्रकाश-नारायण और मेरे लिये यह काम अपेक्षाकृत आसान था। इस दल के बचे सदस्य एक-एक कर दीवार पार कर गए और बाहर हमलोगों से आ मिले। जैसे ही हमलोग सुरक्षित रूप से उस पार पहुँच गये, भीतर से हमलोगों के एक मित्र ने उस रस्सी को बाहर फेंक दिया।

सफलता मिली, फिर दूबे जी से १०० रु० का नोट भजा और भोजन ले वापिस आये। १००) का नोट भुना कर दस पाच क नोट ल लिये गये थे। सबस बढकर तो वे फटे पुरान तीन जोड़े जूते थे, जिन्ह दूबे जी ने भेजे थे। थकावट से भरी इस यात्रा में यहीं पर पहले पहल हमलोगों को मालूम हुआ कि हमलोग सुरक्षित थे और हमलोगों का उत्साह फिर लहलहा उठा।

दोपहर के बाद से कुछ देर रात तक हमलोगों ने अपना समय आराम करने, सोने या बात करने में बिताया। लगभग ९ बजे रात को हमलोगों ने दूबेजी की बैलगाडी देखी, जिसका वादा पहले ही हो चुका था। यह एक छोटी गाड़ी पहाड़ी पर चलने लायक थी। इस पर दो ही आदमी चढ सकते थे। लेकिन जैसा स्वागत इस गाड़ी का हमलोगों ने किया, वैसा किसी भी दूसरी आराम देनेवाली गाड़ी का शायद ही किया हो। दूबेजी को धन्यवाद दे मैं और श्री जयप्रकाशनारायण उस पर चढ गये। बाकी लोग पैदल ही चलने लगे।

बैलगाड़ी हमलोगों को जङ्गल के बीच ले गई। गाड़ीवान ने कहा कि हमलोग गया और हजारीबाग की सीमा पर थे। एक घण्टे बाद हमलोगों ने धड़कते हुये दिल से सीमा पार की। यहाँ पहुँचकर हमने उस बैलगाड़ी स विदा ली और वहीं अ राम करना तय किया।

पहले की भाँति आग सुलगाई गई। उसके चारो तरफ बैठ गये और आगे के कार्य्य-क्रम पर परामर्श करने लगे।

हमलागो के पास कुछ सिक्के थे। खाना नहीं के बराबर था, फटे

पुराने जूते थे—वे भी मगनी के और बदन पर फटे कपड़े थे। हाँ, जीवन के आवश्यक सामान बहुत कम थे, पर उसकी परवाह क्या? उत्साह और उमङ्ग से हमलोगों का दिल भरा हुआ था। हमारे दिल उबाल खा रहे थे। हम अब आजाद थे और क्रांति में अपना हिस्सा लेने जा रहे थे।

इसी प्रसन्नता के साथ हमलोग सो गये। पिछली रातों की तरह मन में किसी तरह का भय नहीं था और न दिल के ऊपर किसी प्रकार का बोझ ही। यह वह निद्रा थी जिसको पाने की इच्छा अनेक को होती है, किन्तु बहुत कम लोगों को ही उसकी प्राप्ति का सौभाग्य होता है।

दूसरे दिन, बैलगाड़ी पर और पैदल चलते हुए, बोधगया के पास फल्गू में स्नान कर हमलोग गया शहर के उस पार, ठीक विष्णुपद के सामने पहुँचे। विष्णुपद को देखकर हमलोग फिर चिन्तित हो उठे और तुरत दाँये घूम कर तेजी से गया से दूर हटने की कोशिश की। मानपुर स्टेशन के पास के गाँव में एक मोदिआईन की दूकान में हमलोगों ने रात काटी।

सुबह चलकर हमलोग राजगृह के रास्ते पर ओरैल गाँव में शाम को पहुँचे। यह गाँव मेरे ससुराल वालों का है और यहाँ से मेरी ससुराल मँझवे केवल ३ मील की दूरी पर है। ओरैल कचहरी में श्री जयप्रकाश नारायण को छोड़ कर मैं मँझवे चला गया। उस समय मेरे श्वसुर श्रीयुत त्रिवेणी प्रसाद सिंह जीवित थे। उन्होंने हमलोगों की सुविधा के लिये जो कुछ भी सभव था, किया।

हमलोगों को बनारस जाना था। रास्ता गया शहर होकर पड़ता था।

तब रेडिओ पर हमलोगों की गिरफ्तारी के लिये ईनाम निकल चुका था और मेरे श्वसुर के घर पर सी०आई०डी० का पहरा बैठा था। प्रश्न था, गया शहर को कैसे पार किया जाय।

शाम को टपवाली ऊँची बैलगाड़ी में सरसो के बोरे लादे गये और टप के नीचे मैं, श्री जयप्रकाश नारायण और शालिग्राम सिंह सो गये। बाकी तीन साथियों ने पहले ही उत्तर बिहार का रास्ता ले लिया था। उसी गाड़ी पर गया शहर पारकर हमलोग रफीगञ्ज पहुँचे। रास्ते में जम्होर में विश्राम कर, फिर नीचे उतर पैदल सोन नदी पार कर, १५ नवम्बर को हम लोगों ने करवन्डिआ में गाड़ी पकड़ी। मुगलसराय उतरकर फिर हम पैदल चल पड़े। रामनगर किला के पास श्री जयप्रकाश नारायण उस पार हिन्दू-विश्वविद्यालय में चले गये और मैं किले के अन्दर दाखिल हो गया।

## उत्पीड़न

हजारीबाग जेल से निकल कर कोई साढ़े तीन महीने मैं बाहर रह सका। कलकत्ते पर जापानी बमबाजों द्वारा बम-गिराये जाने के बाद मैं दिल्ली आया। दिल्ली में साथियों की राय हुई कि मैं पञ्जाब जाऊँ। पञ्जाब के गाँवों से ही फौज के जवान आये थे और पञ्जाब में कोई आन्दोलन न हो तो फौज को प्रभावित करना कठिन था।

दिसम्बर के कँपकँपाते जाड़े में मैं लाहौर स्टेशन उतरा। पहलेसे न मैं लाहौर शहर से परिचित था और न वहाँ के प्रमुख व्यक्तियों से। सबसे कठिन प्रश्न था, कहाँ ठहरा जाय। कुछ नाम दिल्ली [illegible] संचालिका

श्रीमती अरुणा जी ने बता दिये थे। उनमें पहले ही जिस महाशय के घर गया, उस घर के मालिक और मालकिन में मेरे ठहराने के प्रश्न को लेकर द्वन्द्व छिड़ गया। चूंकि मालकिन मेरे पक्ष में थीं, इसलिये जीत मेरे पक्ष में हुई और ४८ घण्टे की सीमा देकर मैं ठहरा लिया गया।

कोई परिचित नहीं, रुपये नहीं, कार्य्यकर्त्ता नहीं और सबसे बड़ी चीज राष्ट्रिय वातावरण नहीं। ऐसा मालूम होता था, जैसे पंजाब का भारत की आजादी से कोई सम्बन्ध नहीं। वहाँ तो प्रश्न था, सिक्खों का क्या होगा! मुसलमानों का क्या होगा? हिन्दुओं का क्या होगा?

सिक्ख रहनुमाओं में से केवल एक प्रिन्सिपल निरञ्जन सिंह ही मुझे ऐसे मिले, जिनके हृदय में मेरे काम से सच्चा अनुराग था। मास्टर तारा सिंह से अमृतसर और लाहौर में मिला। मैंने उनसे पूछा "मास्टर साहब! क्या १८५७ को फिर दुहराना चाहते हैं?" मुसलमान नेताओं का तो कहना ही क्या।

बिखरे हुए कार्य्यकर्त्ताओं को फिर से इकट्ठा करने, धन-संग्रह करने और गुप्त केन्द्रों को स्थापित करने में कोई दो महीने लग गये। सभी फौजी छावनिओं में पर्चे बँटने लगे। सरकारी अमलदारों के कान खड़े हो गये। यह तो स्पष्ट था कि पञ्जाब में कुछ हो रहा था।

लाहौर में एक बड़े प्रदर्शन करने की तैयारी में मैं भी व्यस्त हो गया। इस काम से तांगा पर घूमते हुए, माल रोड पर, २२ फरवरी १९४३ को पुलिस ने मुझे घेर लिया। दुबारे गिरफ्तार होकर मैं लाहौर किला भेज दिया

गया। उस रात से जो उत्पीड़न प्रारम्भ हुआ, वह जुलाई के अन्त तक याने साढ़े पाच महीने जारी रहा। उत्पीड़न का प्रधान उद्देश्य था, हमारे क्रांतिकारी सगठन के गुप्त-भेदों का पता लगाना। उत्पीड़न के साथ साथ प्रलोभन भी कम नहीं थे। एक कवि की पक्तियों को बदल कर मैं गुनगुनाया करता था।

कीमत में मत कोहेनूर दिखलाना ऐ अभिमानी।

किस कीमत पर बचूँ अपने दिल का भरी कहाना।

इन घटनाओं पर प्रकाश डालन वाला पत्र नीचे दिया जा रहा है। इस पत्र की भी एक अपना कहानी है। अक्तूबर के शुरू में श्री पुरुषोतम त्रिकमदास, चन्द्रकान्त मोदी और बलराम यसान के साथ मैं कसूर जेल में रह रहा था। वहाँ लाहौर किले का एक नरपिशाच रॉबर्ट्सन (डी० आ० जी० सी० आइ० डी०) मिलने आया। उसकी बातों स पहले पहल हमें पता लगा कि श्री जयप्रकाश नारायण गिरफ्तार हो चुके थे और लाहौर किले में कैद थे।

रॉबर्ट्सन के जाने के बाद पुरुषोतम और म बहुत चिन्तित हो गये। लाहौर किले के अत्याचार को सहन करना था जयप्रकाश नारायण के लिये सभव नहीं था। बाहर लोगों का पूरा पता नहीं था कि किस किस्म के अत्याचार वहाँ हो रहे थे। हमलोगों न एक पत्र लिखा और उसकी ३ प्रतिया कीं। एक पजाब के मुख्य मत्री के पास और दूसरा हाइकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश के पास भेजा। यह हमें निश्चय था कि ये पत्र उनके पास नहीं

जायेंगे। इसलिये एक प्रति हमने चोरी से लाहौर के एक मित्र के पास भेजी, जो आज पंजाब हाइकोर्ट के एक जज हैं। उन्होंने दिल्ली और बम्बई के साथियों को खबर कर दी। बाहर के साथियों ने तुरत पंजाब हाइकोर्ट में श्री जयप्रकाश नारायण की ओर से हैबियस कोर्पस की दर्खास्त पेश कर दी और उसके साथ इस पत्र की नकल भी इस नोट के साथ लगा दी कि यह वही पत्र है, जो आपके नाम एक कैदी ने भेजा है, परन्तु आपको दिया नहीं गया। प्रधान न्यायाधीश ने जब इस पर पंजाब सरकार से जवाब तलब किया तो सरकार ने मेरा असल खत उनके पास भेजा। खत यों है—

मार्फत सुपरिन्टेन्डेन्ट
कसूर सब जेल, कसूर
९-१० ४३

माननीय प्रधान न्यायाधीश और प्रधान मंत्री,

महाशय,

मैं एक राजबन्दी हूँ और कसूर सब-जेल में २८-८-४२ ई० को रखा गया हूँ। मैं बिहार के रघुनाथपुर गाँव का रहने वाला हूँ, जहाँ मेरी और मेरे परिवार की जमीन्दारी है। काशी विद्यापीठ का मैं स्नातक हूँ और १९२८ से कांग्रेस के कामों में सक्रिय भाग लेता आया हूँ।

२२ फरवरी, १९४३ को मैं लाहौर में पकड़ा गया और लाहौर के किले में ५½ बजे शाम को मैं भर्ती हुआ। शीघ्र ही मुझ से प्रश्न पर प्रश्न पूछे जाने लगे और दूसरे रोज लगभग ६½ बजे शाम तक यह क्रम जारी

रहा। इस तरह २५ घंटे तक प्रश्नावली की झड़ी लगी रही। इस बीच मुझे सिर्फ पैखाने और पेशाब के लिये ही छुट्टी मिली। इस तरह के २४ घंटे या इसके ऊपर के सवाल-जवाब का सिलसिला प्रायः प्रत्येक सप्ताह में एक बार जारी रहा। इसके अलावे भी नित्य घंटों प्रश्न पूछे जाते थे। ऐसे मौके पर मुझे बैठने के लिये एक कुर्सी दी जाती थी, जिसकी पीठ हटा ली गई थी। अधिकतर प्रश्न बिलकुल फिजूल बातों के सम्बन्ध में होते थे। इन प्रश्नों द्वारा वे मुझमें इतनी मानसिक और शारीरिक थकावट पैदा करना चाहते थे कि मैं ऐसी बातें स्वीकार कर लूँ, जिन्हें गुप्तचर विभाग के कर्मचारी मुझसे जबर्दस्ती कहवाना चाहते थे।

उदाहरणार्थ सी० आई० डी० वाले मुझसे यह कहलाना चाहते थे कि मेरे जानते महात्मा गांधी को जापानियों से पूरी हमदर्दी है तथा कांग्रेस की कार्यसमिति ने, ९ अगस्त ४२ की गिरफ्तारी के पहले से ही हिंसात्मक युद्ध चलाने का षड़यंत्र रच रखा था। जितना ही मैं इन्हें अस्वीकार करता उतना ही वे क्रुद्ध हो उठते और क्रोधावेश में मारपीट गाली-गलौज सब कुछ कर डालते थे। यह रफ्तार उनकी लगातार जारी रही।

सर्वदा ऐसे सवाल जवाब के समय हमारे ऊपर घूंसे, थप्पड़ बरस पड़ते। ठोकरों से ठुकराया जाता, मुक्कों से चेहरा लाल कर दिया जाता और *बाल नोच लिये जाते। सवाल-जवाब के समय ऐसे बुरे व्यवहार के अलावे* भी अनेक बार मुझ पर मार पड़ती थी। चूतर पर कम्बल डाल कर, जिसमें दाग देह पर न पड़े, मार पड़ती थी। बार बार होश में लाकर वे पीटते थे।

११-३-४३ को ऐसी-ऐसी ही मार-पीट के कारण मैं एकदम बेहोश हो गया। मैं नहीं जानता कि बेहोशी में भी उन लोगों ने मुझे पीटा या नहीं, किन्तु ऐसी मार में अनेक बार बेहोशी से कुछ मदद मिलती थी। बंदी अवस्था में शुरु से अंत तक बहुत बुरी बुरी गालियाँ देना तो आम बात थी।

यह सब गुप्तचर विभाग के सुपरिन्टेन्डेन्ट रौबिन्सन के आदेशानुसार होता था। मैं उन सभी को नहीं जानता, जिन लोगों ने मुझे मारा या गालियाँ दीं। मारनेवालों में चौधरी महम्मद हुसेन इन्सपेक्टर, बन्ता सिंह इन्सपेक्टर तथा महम्मद अमीन जमादार थे। गाली देने वालों में रौबिन्सन और सैयद अहमदशाह सुपरिन्टेन्डेन्ट थे। चौधरी अहमद हुसेन महात्मा गांधी और नेहरु जी को भी गालियाँ देते थे। लाहौर किले में जब तक बन्दी रहा, मैं बराबर काल कोठरी में बन्द रखा गया। किसी से भेंट नहीं करने दी जाती थी, न अपने परिवार वालों से और न उन राजनीतिक कैदियों से जो बाद मुझे मालूम हुआ कि उसी किले में कैद थे। जो कपड़े मेरे बदन पर थे, उनके अलावे मुझे कोई दूसरा कपड़ा पहनने को न दिया गया। जब जब डाक्टर साहब से मेरी भेंट हुई, उनसे मार के विषय में शिकायत की और यह भी सूचना दी कि पीटे जाने से मैं बेहोश हो जाया करता हूं। एक बार मैं डाक्टर के सामने ही बेहोश हो गया। यह मेरा दुर्भाग्य था कि मैं डाक्टर का नाम नहीं जान सका, किन्तु मुझे इसमें सदेह नहीं कि आप अवश्य उनका नाम पता लगा लेंगे।

मैं आज छत्तीस वर्ष का हूँ और अपने जीवन में ग्यारह मार्च ४३

के पहले मुझे कभी बेहोशी अथवा और किसी प्रकार का दौरा नहीं हुआ था। गिरफ्तारी के समय मैं तौल में १९२ पौंड था और जब मैं इस जेल में आया १२५ पौण्ड था। इस प्रकार लाहौर किले में २५ सप्ताह के अन्दर मैं ६९ पौण्ड घट गया। एक बार इस प्रकार के दुर्व्यवहार के कारण मैं अपने जीवन से इतना निराश हो गया था कि मैंने इन्सपेक्टर को लिखा था कि मेरे शरीर का दाह कर्म कैसे होगा और साथ ही अपने परिवार के लिये अन्तिम सम्वाद भी लिख दिया। यदि आज मैं जीवित हूँ तो इसमें गुप्तचर विभाग के किसी भी दोष के कारण नहीं क्यों कि दर असल जो कुछ भी उन लोगों ने किया, वह मेरी जान ले लेने की कोशिश से कम न था।

१५ अगस्त, ४३ के लगभग मैंने सुपरिन्टेन्डेन्ट सैयद अहमद, डिपटी सुपरिन्टेन्डेन्ट रिजवी, इन्सपेक्टर नौरंग सिंह तथा लाइन अफसर गुरुदत्त सिंह को इस बात की सूचना दी कि अगर मुझे प्रधान मंत्री के पास जैसा कि अनेक बार मैंने प्रार्थना की है, १लो सितम्बर तक पत्र लिखने को अनुमति और लाहौर किले के अन्य कैदियों से मिलने नहीं दिया गया तो मैं भूख-हड़ताल प्रारम्भ कर दूँगा। मैंने डाक्टर से भी इस विषय में कहा। अनुमान करता हूँ कि डाक्टर ने अधिकारियों से बिगड़ कर कहा कि आगे शारीरिक कष्ट देना बन्द करना होगा और यह भी बता दिया कि मेरे स्वास्थ्य की जैसी हालत उस समय थी, उसमें भूख हड़ताल के कारण मेरा शीघ्र प्राणान्त हो जायगा। इसका नतीजा यह हुआ कि १५ अगस्त के बाद मुझे निश्चिन्त छोड़ दिया गया और २८ तारीख को मैं इस जेल में

बदल दिया गया।

तौल में घट जाने के विषय में ऊपर ही लिख दिया है किन्तु इसके अलावे भी मेरी तन्दुरुस्ती बहुत बुरी अवस्था में है। भूख तो करीब करीब लगती ही नहीं। रात में पूरी नींद भी नहीं आती और मैं इतना दुर्बल हो गया हूँ कि थोड़ा भी मानसिक या शारीरिक परिश्रम के बाद मैं अत्यंत थकावट अनुभव करने लगता हूँ। स्थानीय डाक्टर की राय है कि मेरे शरीर में खून की कमी है। २३ फरवरी, ४३ के अपराह्न में जब मैं सुप० सैयद अहमद के दफ्तर में सवालों का जवाब देने लाया गया था, उस समय मैंने पिछली रात की मार के विषय में शिकायत की और यह भी कहा कि मैं माननीय प्रधान मन्त्री, जिलाधीश और जिला जज के पास दर्खास्त भेजना चाहता हूँ। दूसरे दिन सुप० सैयद अहमद साहब ने कहा कि दरख्वास्त देने की अनुमति नहीं दी जा सकती। किन्तु उनके आदेशानुसार मैंने गुप्तचर विभाग के ही डिप्टी इन्सपेक्टर जेनरल के नाम दर्खास्त लिखकर सैयद अहमद के हाथ में दे दी। उसका कोई भी उत्तर मुझे आज तक न मिला। उसके बाद करीब करीब हर हफ्ते में प्रार्थना करता रहा; किन्तु जबानी मुझसे कह दिया जाता कि इस प्रकार की अनुमति नहीं दी जा सकती। २३ फरवरी, ४३ को ही मैंने सुप० सैयद अहमद से इस बात की भी प्रार्थना की कि मुझको अपनी पत्नी और अपनी बहन, जो काशी-नरेश की राजमाता हैं, के पास पत्र लिखने की आज्ञा दी जाय। मुझे कागज के दो टुकड़े मिले जिसपर सिर्फ गिरफ्तारी की ही बातें लिखी जा सकीं। मैंने अपनी स्त्री को लिखा कि

मुझसे भेंट करने के लिये पञ्जाब के गुप्तचर विभाग के डी० आई० जी० के पास आज्ञा प्राप्ति के लिये वह दरखास्त दे। इन पत्रों में मैंने अपना पता नहीं लिखा क्योंकि मुझको ऐसा करने से मना कर दिया गया था। तदुपरान्त अनेक बार मैंने पत्नी के पास पत्र लिखने की अनुमति माँगी किन्तु नहीं मिली। मुझे सदेह होता है कि मेरे लिखे हुए पत्र मेरी पत्नी और मेरी बहन के पास नहीं पहुँचाये गये। ६ सितम्बर को मैंने इस जेल के सुप० को लिखा कि जब मैं लाहौर किला में था, तो मुझको गुप्तचर विभाग के अफसरों ने अनेक प्रकार से सताया था। इस सम्बन्ध में मैं श्री मलिक जीवनलाल कपूर वैरिस्टर से राय लेना चाहता हूँ, जो लाहौर हाईकोर्ट के पुराने वकील ह। मैंने यह भी लिखा कि आप कृपया कपूर साहब से भेंट करने का आवश्यक प्रबन्ध करदें। दूसरे दिन ७ सितम्बर को श्री मेकडोलेंड-होम-सेक्रेटरी, सी० आई० डी० के सुपरिन्टेन्डेन्ट के साथ जेल देखने आये। दोनों ने मुझसे कहा कि किसी भी वकील से मेरी मुलाकात नहीं हो सकती और सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह कही कि जब तक मैं राजबन्दी हूँ, तब तक मैं हाइकोर्ट या अन्य अदालत के पास दरखास्त नहीं भेज सकता। मैं नहीं जानता कि मेक्डोलेन्ड इसकी जानकारी रखते थे या नहीं कि पञ्जाब गुप्तचर विभाग कैदियों को सताता है और उसके साथ बुरी तरह पेश आता है। किन्तु यह मान भी लिया जाय कि वे नहीं जानते थे, फिर भी मेरे इस जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास लिखे गये पत्र में इस बात की जिक्र की गई थी और मिस्टर मेक्डोलेन्ड ने मुझसे भेंट करने के पहले मेरे इस पत्र को

पढ़ लिया था। न तो उन्होंने ही और न जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट ने ही जोकि मैजिस्ट्रेट भी हैं, इतनी तकलीफ उठाई कि सताये जाने की शिकायत के सम्बन्ध में एक शब्द भी दरियाफ्त करें।

जब मेकडोलेन्ड ने मुझसे यह कह दिया कि श्री कपूर के साथ मेरी मुलाकात नहीं हो सकती तो मैंने श्री कपूर को एक पत्र भेजा जिसमें मैंने आवश्यक बातें लिख दी थीं और उनसे यह भी अर्ज किया कि उस पर कानूनी कार्रवाई करें।

यह पत्र मैंने १५ सितम्बर को लिखा था। किंतु आज तक इस बात की खबर मुझे न मिली कि वह पत्र श्री कपूर को दिया गया या नहीं। चूँकि मेरा यह इरादा है कि जिन लोगों ने मुझे गैर कानूनी तरीके से पीटा है, उन्हें मैं न्यायालय से समुचित सजा दिलवाऊँ; अतः मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप शीघ्र इसका प्रबन्ध करें कि मेरा पत्र श्री कपूर को मिल जाय और मुझे पूरी सहूलियत मिले कि मैं मुकदमा चला सकूँ।

मैंने जर्मनी के तीसरे दर्जे के अमानुषिक अत्याचार के बारे में सुना था; किंतु मुझे यह नहीं मालूम था कि पंजाब की जवाबदेह सरकार के अन्दर भी गुप्तचर विभाग, यदि बढ़ कर नहीं तो, कम से कम उस हद तक अत्याचार करता है। इसका ज्ञान मुझे निजी अनुभव से प्राप्त हुआ।

मैं यहाँ लिख देना चाहता हूँ कि पंजाब सी० आई० डी० द्वारा अकेले मेरे ऊपर ही ऐसा अत्याचार किया गया हो और सिर्फ सी० आई० डी० द्वारा ही ऐसे तीसरे दर्जे का अमानुषिक अत्याचार किया जाता हो, ऐसी